

यह प्रमाण प्रमाण पर गणना करने से साहित्य की विविध विधाओं में सुन्दर, गरम और नैतिक साहित्य प्रकाशित कर अपना श्रद्धा-भिनय उपहार गुरुदेवकी के चरणों में समर्पित किया है।

हम चाहते हैं कि माहित्य के क्षेत्र में प्रस्तुत
 वह बालोपयोगी सुन्दर मन्त्रित माहित्य भी दे
 लिए उत्कृष्ट जोष प्रदान तुलनात्मक दृष्टि में लिये गए
 ही द्वारा सुन्दर्यो द्वारा लिखित "जैन क्याएँ" सीरीज के
 व अर्थ-महयोग प्राप्त होगा। हमारी सभी
 हमें आशा है, नही अपितु दृढ विश्वास है
 होगा।

—मरी

શ્રી તારકનુભ જૈન મન્યાય
ઉદયપુર

वंश में कहा—मगधन् । मुने निर्ग्रन्थधर्म पर अपार श्रद्धा है । आपथी के पावन उप-
 न्यास को ग्रहण कर अनेक राजा, युवराजा, उभयमेठ, मेनापति, सायंवाह मुण्डित होकर
 मगध में आकर पण्डितान्तरण कर श्रमण बने हैं, पर मैं श्रमण बनने में समर्थ नहीं हूँ ।
 मैं तुम्हारे धर्म को स्वीकार करता हूँ । तात्पर्य यह है कि जैन श्रमणोपासक गृहस्था-
 न्त में रहकर भी कर्मजागी मानता है, पर उसे वैदिक परम्परा की तरह आदर्श
 नहीं मानता । इसी कारण है कि श्रमण मस्त्रुति का रुजान श्रमणधर्म की ओर विशेष
 गया है । तथापि मगध में अनेक स्थलों पर कहीं मधेप में और कहीं विस्तार
 में मगध के जीवन के सम्प्रदाय में चिन्तन किया है । और वह चिन्तन इतना महत्त्व
 प्राप्त है कि इसके पश्चात् निर्मित ग्रन्थों में उस पर विस्तार से विश्लेषण हुआ है । हम
 मगध के मगध में अनेक स्थलों में चिन्तन जाये हुए श्रावक धर्म के सम्बन्ध में चिन्तन को
 मगध के मगध में चिन्तन पर आधृत स्वतन्त्र ग्रन्थों का परिचय
 देंगे ।

पर अस्मदिक प्रिम्बान में लिखा है । दिगम्बर विज्ञ भी पीछे नहीं रहे हैं । सर्वान्य मनी-
 दिग्य का निमित्त है कि जैनसम्बर और दिगम्बर विज्ञों द्वारा लिखा हुआ श्रावकाचार
 का अन्तिम एक मात्र ग्रन्थ में भी अधिक परिमाण वाला है । हम यहाँ पर अब
 जैनसम्बर ग्रन्थों का परिचय देंगे और उसके पश्चात् दिगम्बर ग्रन्थों का, जिसमें
 जैनसम्बर ग्रन्थों का नाम होना कि जैनसम्बरों ने श्रावकाचार पर कितना लिखा है ।

जैनसम्बर ग्रन्थों में

जैनसम्बर उमास्वामि—आचार्य उमास्वामि का जैनदर्शन में अनूठा स्थान रहा
 जैनसम्बर उमास्वामि एक महत्त्वपूर्ण कृति है । जैन तत्त्वज्ञान, आचार, भूगोल,
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान, कर्मसाम्य प्रभृति अनेक विषयों पर उसमें सुन्दर
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में बहुत ही सशेष में श्रावकों के प्रा,
 जैनसम्बर उमास्वामि का अविचार का प्रतिपादन किया है । किन्तु श्रावक
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में नहीं हुआ है ।

जैनसम्बर उमास्वामि का 'श्रावक' प्रजति है । उस ग्रन्थ में चार सौ तीन
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में लिखा गया है । उस पर
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में ही 'श्रावक' शब्द पर निम्न
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में
 जैनसम्बर उमास्वामि का ज्ञान के मातृवे अस्वामि में ही 'श्रावक' शब्द पर निम्न

—ने, जो सामान्यतः उन में आगन, लय, काल आदि का वर्णन किया है, तथा प्रोप-
 —तत्त्व सिद्धान्त में उपवास न कर सकने वालों के लिए एकमवत, निर्विकृति आदि
 —ने का विधान है और मौलिक प्रहर के उपवास का विधान किया है। उन्होंने
 —गर्भों की रीति-रिवाज का कोई उल्लेख नहीं किया है। उस प्रकार दिगम्बर
 —गर्भों में आगन में न व्यवस्थित प्रदिपादन करने वाले ये प्रथमाचार्य हैं।

श्रीमो श्वेतनर ने सर्वप्रथम दिगम्बर परम्परा में श्रावकाचार पर श्वेतनर
 —ने विधान की। उनकी 'स्वतन्त्रक श्रावकाचार'³¹ बहुत ही महत्वपूर्ण रचना
 है। इसका सर्वप्रथम संस्करण ही महिमा पर प्रकाश आला है।

है।^{१२} उसके पश्चात् मद्य, मांस, मधु और पाँच उद्वर फलों के त्याग को ब्रह्म-
 नृत्त बनाया है।^{१३} आचार्य जिनमेन ने मूल गुणों में पाँच अणुव्रतो को और गोम-
 ने पाँच उद्वर फलों के त्याग को महत्त्व दिया है। और दोनों ने अपने कथन के
 पुष्टि के लिए "उपनिषदाध्ययन"^{१४} का उल्लेख किया है। पर वह कौन-सा उ-
 पनिषद् है जिसके आधार पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये यह निश्चित न
 हो सकेगा। आचार्य मोमदेव ने मद्य आदि का उपयोग करना म-
 न्य माना है। वह महात्मा है, उन्होंने उसके परित्याग पर अत्यन्त ब-
 रकबा लगाया है—जो मांस का भक्षण करते हैं उनमें दया का अभाव हो-
 ता है। अतएव मद्य वगैरे में मद्य का अभाव होता है। मधु और उद्वर फ-
 लों का अभाव होता है।

मिदा है । सर्वप्रथम वर्णनित श्रावण को मण्डव्यमन^{४६} का त्याग आवश्यक माना है ।
 अष्टौत्थम मन्त्र स्मृतना के त्याग पर अत्यन्त बल दिया है । १२ व्रत और ११ प्रतिमाओं
 का उन्नेन प्राचीन परम्परा की दृष्टि में लिया है ।

५० अतिचार्य जी ने "सागारधर्मामृत" ग्रन्थ की रचना की । लेखक ने अपा
 लकी ऐतिहासिक और विगम्य ग्रन्थों का पाठायण किया । अतः उन्होंने श्रावकधर्म
 के सर्व मन्त्रों को का मन्त्र किया है । उनके ग्रन्थ में "नीतिवास्यामृत" और आचार्य
 के "प्रज्ञप्ति" का स्पष्ट प्रभाव है । अतिचार्य के वर्णन के लिए उन्होंने शैला
 का उदाहरण दिया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में ही सर्वप्रथम मण्डव्यमनो के
 त्याग का वर्णन किया गया है । श्रावण की दिनचर्या और उसकी समाप्ति का
 वर्णन किया गया है ।

निर्णय है। मन्त्र वगैरह के म-दृष्टान्त दीप बताकर उनके त्याग पर बल दिया है।
 अथर्ववेद के निरूपण करने हुए व्रत प्रतिमा के अन्तर्गत १२ व्रतों का निरूपण
 किया है और प्रतिमाओं के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला है।

जिज्ञोषि रचित 'स्वमाता' ग्रन्थ में श्रावक के द्वादश व्रतों के साथ मुनिजनों
 के निरूपण पुरातन ऋषि देने के सम्बन्ध में भी संकेत किया है। विभिन्न प्रकार के
 व्रतों के बीच का संबंध उभय ग्रंथों और उनके निषेध भी बताये गये हैं।

'पद्मचरित्र' के पृष्ठ १४ में श्रावकानां का निरूपण है। पञ्चमीय श्लोको
 में भी व्रतों का उल्लेख है।

— — — — —

व्रतों

(३) सम्मत्तार महाभारत पर उमकी पूर्णनिष्ठा होती है।^{५३}

‘साम्प्रत आरक्त’ के विषय निम्न विशेषताएँ आवश्यक मानी जाती हैं—

(१) वह देव भुक्त, धर्म पर पूर्ण निष्ठा रखता हुआ स्थूल हिमा में निवृत्त रहता है।

(२) वह, मृत्यु के पश्चात् अमर्य पदार्थों का परित्याग कर धर्म योग्य लगता, जो कि निष्ठा परित्याग प्रवृत्ति मनुष्यों में उमकी जीवन जगमगाता है।

(३) वह प्रतिनिधि ‘पदार्थ’ की भावना करता है। वे षट्कर्म उम

प्रतिमाओं की माधना वर्तमान युग में
हो रही है ।

यन्त्र का अन्वय करने समय मुझे परम स्नेही मन्त्र मानस कलम-कलाश्रम,
यन्त्र मुनि श्री श्रीमन्मन्त्रों का हादिक महयोग मिला है । उनके महयोग के
यन्त्र का अन्वय करने जीवन्मन्त्र हा मका है । एतदर्थ मैं उन्हें जितना भी
यन्त्र का अन्वय कर रहा हूँ ।

के मतानुसार—यय, यय, छविच्छेद, अतिभार, भक्तपानविच्छेद
१९८-१९९।

४ मन्त्र गीतन का मन्त्र

१७०-१९५

मन्त्रात्मा त माय मन्त्र आवश्यक है १७०, मानव-जीवन की नींव
मन्त्र पर टिकी है १७१, मारे विश्व का मूलधार मन्त्र १७२, मन्त्र-
मन्त्र वस्तु निर्मित है, निष्प्राण है १७२, मन्त्र की गर्मी हो, तभी
मन्त्र मन्त्र का आधारत्व है १७३, मन्त्र हो तो दूसरे दुर्गुण
मन्त्र का मन्त्र है १७३ मन्त्र ही नैतिक तत्व है १७४, मन्त्र ने मारे
मन्त्र मन्त्र (द्वन्द्व) १७४-१७५, मन्त्र ने अन्य सद्गुणों के द्वार
मन्त्र (मन्त्र) १७५-१७६, मन्त्र का वा मन्त्रमे बड़ा बल १७६, मन्त्र-
मन्त्र मन्त्र १७६-१७७, निष्काम मन्त्रताओं का आधार मन्त्र
मन्त्र, मन्त्र मन्त्र मन्त्र १७७, नास्तिर भी मन्त्र की शक्ति को
मन्त्र मन्त्र, मन्त्र मन्त्र मन्त्र का आधार मन्त्र १७८, व्यवहार
मन्त्र मन्त्र १७८ मन्त्र मन्त्र बुनियादी वस्तु १७९, मन्त्र
मन्त्र मन्त्र मन्त्र १८०, मन्त्र पुण्य की मेती

नामाधिकारी व्यक्तिगत नाम ३१२, मानव जीवन की सार्थकता
 ३१३, गृहस्थ-जीवन में ब्रह्मचर्य
 ३१४, गृहस्थजीवन में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण न करने
 ३१५ चरित में निमित्तता मग्न (हटाव) ३१६-३२०, श्रावक के
 ब्रह्मचर्य की मर्यादा ३१६ विवाह काम-नामना को नियमित करने का
 ३१७, विवाह किमते लिए आवश्यक, किमते लिए अनावश्यक
 ३१८ विवाह का उद्देश्य ३१९, विवाह : विषय-
 ३२०, विवाह की मर्यादा (आचार) ३२१, स्वपत्नीमन्तोष—परदारविरमणव्रत
 ३२२, परदारविरमणव्रत में अंगार हानिया ३२३, स्वदारमन्तोष-
 ३२४, स्वपत्नीमन्तोष की मर्यादाएँ ३२५, स्वदार-
 ३२६, स्वपत्नी के प्रति मानविक आकर्षण ३२७, ब्रह्मचर्य-रक्षा के उपाय
 ३२८, ब्रह्मचर्य-रक्षा के पालन अंगितार ३२९, (१) उत्पत्तिक परि-
 ३३०, (२) अद्वितीयतागमन ३३१, (३) अनमर्षिता ३३२,
 ३३३ (४) नाममोगतीप्राप्तिपापा ३३४ ।

श्रावणप्रस-वर्जन . अध्याय १

ले श्रेष्ठ है ? अपनी प्रगल्भ बुद्धि द्वारा विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने अगणित न-सृष्टियाँ प्राप्त कर ली हैं। स्थिर दवाने ही कमरा प्रकाश में जगमगा उठता है, सूर्य प्रकाश फैला हुआ देखा करने लगता है, नल गोलते ही गंगा-जमुना आपने जल-प्रपात के लिए तैयार हो जाती है। धरती पर चलना हो, आकाश में उड़ना हो, पानी पर तैरकर चलना हो तो मनुष्य को अपने पैरों को तकलीफ देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। रगोई बनाने, तपड़े धोने, सफाई करने आदि प्रत्येक कार्य के लिए विशेष वैज्ञानिक उपकरण ही सखा में उपस्थित रहते हैं। मनुष्य को हाथों की शक्ति की जरूरत नहीं। परन्तु मैं आपसे पूछना हूँ कि उनका सब होते हुए भी आपका सिर क्यों झुट्टि में अभी यह विचार नहीं करना कि समार में अज्ञानि-तुल्यता क्यों है ? उन तुल्य और अज्ञानि का दूर करने के लिए मैं क्या कर सका

कर्म में आगे बढ़ने की होनी तो कितना अच्छा होता ! सीधी-सी बात यह है कि विज्ञान में सुख और ज्ञानि प्राप्त नहीं होती । सुख-शान्ति अच्छे मनुष्यों से उत्पन्न होती है और अच्छे मनुष्य बनाना विज्ञान के बस की बात नहीं ।

गन्तव्यं मे जातु मे सुख-शान्ति सम्भव नही

द्वय प्रजन होता है—यथा राजनीति मगार मे मुक्त-शान्ति उत्पन्न करने मे सम्मर्प है । दुसरा उत्तर भी नकार मे आवेगा । क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र मे विग्रह मे तब हीन प्रमुख वाद है—पूँजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद । ये तीनों ही परस्पर विरोधी हैं । समाजवाद और साम्यवाद एक लड़ाई-जगड़ा करके एक दूसरे को नष्ट कर देने पर तैयार हैं । तीनों पक्षों का लक्ष्य एक होने हुए भी ये तीनों परस्पर सघर्ष कर रहे हैं । राजनीति मे सनातनता ही सबका लक्ष्य रहता है, राष्ट्र की या अर्थ की सेवा नहीं । वे राष्ट्रीय-राष्ट्रीय की समस्या को हल करने का दावा तो करते हैं कि वे सनातनता को नष्ट कर रहे हैं । राजनीतिज्ञों का पारस्परिक सघर्ष या जनता के हितों के प्रति अज्ञानता ही मनुष्यों के लिए अधिक दुःख या अज्ञानता का कारण है ।



जानकरके स्वयं तो अच्छा दिखाना, अपने धन-वैभव का प्रदर्शन करके प्रसिद्धि पानेना, अपनी दुकान अच्छी जमा लेना, व्यापार-धंधा घडल्ले से चलाना, यो किसी तरह ने जिदगी के दिन पूरे कर लेना और एक दिन इस ससार से कूच कर जाना ही मानव-जीवन का उद्देश्य समझते हैं। वे इसी तुच्छ एवं अवास्तविक जीवन-प्रयत्न को प्रति के लिए रात-दिन इसी हाय-हाय में पड़े रहते हैं। क्या इसी तुच्छ प्रयत्न के लिए ही उमे इतना उन्नत शरीर, सर्वोत्तम विचारशील मन, तथा भावा-भिन्न के लिए आजम्बी वचन एवं बहुमूल्य, देवदुर्लभ तथा सर्वशक्ति-मम्पन्न मानव-जीवन मिला है ? अगर केवल खाना-पीना, कमाना और जैसे-तैसे जिदगी पूरी करना ही मानव जीवन का उद्देश्य होता हो उममे और पशुपक्षियों में कोई अन्तर न होता। कीट-पतंग, या पशु-पक्षी भी तो यही करते हैं। कीड़े-मकौड़े भी खाते पीने, सोते और बच्चे पैदा करते हैं। पशु-पक्षियों को भी आहार, निवास आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। वे भी जन्म लेते हैं, खाते पीते हैं, जीवनयापन के साधनों को अपनी सेवा के लिए इस्तेमाल में किसी भी प्रकार पूरे कर लेते हैं, और एक दिन मर जाते हैं। मानव-जीवन का उद्देश्य इतना ही क्या होता है ?

तो प्राप्ति करना है, जिसके प्राप्ति करने के बाद कुछ भी पाना शेष न रहे और न ही उमरी उठे हो।

पूर्णता की प्राप्ति में विघ्न, कारण, निवारण

जैसा कि मैंने पहले बताया था कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूर्णता, मुक्ति या परमानन्द की प्राप्ति करना है, तब सहसा प्रश्न उठता है कि उस पूर्णता की प्राप्ति में विघ्न क्यों आ जाते हैं? उन विघ्नों को दूर करने का तरीका क्या है? पूर्णता की प्राप्ति के लिए साध्य क्या हो सकता है?

यदि वर्तमान मानवजाति पर विचार किया जाय तो मनुष्य आज जिन बाधों से पूर्णता के लिए असमर्थ है और मदा-मर्षदा के लिए मनुष्य हो जाना चाहता है, वे सब बाध हैं अमन्य हैं मिया भ्रान्तियाँ हैं। अपूर्णता ही उनका स्वरूप है। मदा-मर्षदा, दुःख, विषाद आदि चीजों की पूर्णता की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि वह छोड़ा देने वाली सिद्ध होनी है। इन चीजों को पाकर वह मोक्ष नहीं है, बल्कि कुछ ही वर्षों बाद जब सम्पत्ति और मत्ता समाप्त होने लगती है तो वह मोक्ष की ओर ले जाती परिस्थिति आ जाती है। एक ओर से वह अभावों से घेर ली जाती है तो दूसरी ओर से नाना प्रकार के अभाव मुंह बांधे जाते हैं। मदा-मर्षदा, भौतिक कामनाओं की धमाचौकड़ी में जिदगी जीना ही है। जबकी विधि उस छोटी के कुत्ते की सी हो जाती है, तो वह मनुष्य को अपने स्वयं के अभावों के कारण के लिए कुछ किया। यो सामाजिक उद्योगों के द्वारा ही पूर्णता या वांछित सत्य हृदय में समाप्त हो जाय

की दृष्टि में भौतिक या राजकीय नीमा सूचक भेद रहेंगे, पर मन में सबके साथ अभेद, मैत्री या वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना होगी, ऐसी दशा में धर्म के विभिन्न वर्गों का पालन महजभाव में ही रहेगा । धर्माचरण उसके जीवन का अंग बन जाएगा । धर्म ही एक ऐसा माध्यम है, जो मानव को पूर्णता के शिखर पर क्रमश ले जा सकता है । परन्तु पूर्णता के शिखर पर पहुँचने के लिए धर्मपालन का पद-पद पर जागृति-पूर्वक पृथक्करण करना होगा । तभी मानव-जीवन की श्रेष्ठता, ज्येष्ठता और विज्ञेयता सिद्ध होगी । और भी उसी पथ पर चलकर मानव-जीवन की श्रेष्ठता और विज्ञेयता को हिन्दू वर्गों में स्थापित करने का प्रयत्न चूमेगी ।

☆

को छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, उसके बारे में यही माना जाता है कि उसने पर्याप्त धर्म नहीं किया और दण्डस्वरूप उसे एक वर्ष तक पुनः उगी पुरानी कक्षा में पढ़े रहने दिया जाना है।

चौगर्मा नाम योनियों में नमण करके जीव को अपने को सुधारने और सम्माननगामी बनने की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। वह पढाई पूरी होने पर उसे मनुष्य जीवन का एक अनस्य अवसर परीक्षाकाल जैसा मिलता है। उसमें मनुष्य को यह सिखाकर देना है कि उसने कितनी आत्मिक प्रगति की, अपने को कितना सुधारा, अपना चित्तकोण कितना परिमार्जित किया और उच्चभूमिका की ओर अग्रसर होने की ओर कितना प्रयास किया? मानव जीवन का प्रत्येक दिन मनुष्य के लिए एक परीक्षा है। एक महत्त्वपूर्ण परीक्षा है मानव के सामने यह प्रश्नावली हाथ करके दी गयी है—

जैसे सरकारी कानून तो सरकार दण्डशक्ति द्वारा पालन करवाती है, फिर भी कई लोग उसमें गड़बड़ कर डालते हैं। इसीलिए धर्म का स्थान सरकारी कानून से उँचा है। उसका पालन अगर किया जा सकता है तो व्रतो के माध्यम से ही। मनुज जब स्वच्छा से व्रत ग्रहण करता है, तभी वह अपने जीवन में धर्माचरण यथेष्ट रूप से कर सकता है, धर्म-मार्गदा में चल कर अपने और दूसरों के जीवन को सुखी और समृद्ध बना सकता है ?

मरना तो समाज, राष्ट्र और विश्व को कैसे चलाया जा सकता है ? जैसे दो तटों के बीच में बहने वाली नदी निर्विघ्नतापूर्वक समुद्र तक पहुँच सकती है, वैसे ही यम-नियम रूप में अनुशासन में चलने वाली आत्मारूपी सरिता परमात्म सिन्धु तक निर्विघ्न पहुँच सकती है। अतः स्वेच्छा से ग्रहण करने के कारण आत्मानुशासन है। ये जीवन और जगत् में सुखवस्तु पैदा करते हैं। जगत् का विकास, सुरक्षा और शांति अनुशासन पर निर्भर है और अतः जीवन में अनुशासन पैदा करते हैं। सुख और चन्द्रमा अथवा नियमवद्ध है। ये अनुशासन में रहते हैं, नियमानुसार समय पर उठते और सोते हैं। जो अनुशासन में न रहे तो बहुत गड़बड़ हो जाए। क्योंकि उनका समाज तो तालनिर्णय होता है और शुद्ध पचासों की रचना की जाती है। अतः जगत् में अपनी ऐंगी भाषा बोलती है कि ये नियमानुसार उठते और सोते हैं, जीवन का सुख और शांति का सुख प्राप्त है। सुखगत बन्धन के बिना जो जीवन सुख, शान्ति और चित्त विचार जाने हैं, वैसे ही अनुशासन की शान्ति और सुख जीवन की कड़ियाँ भी छिन-भिन्न हो जाती हैं। घड़ी भी अनुशासन में चलती है, जो जीवन समरक्षक है। यदि रेलगाड़ी पटरियों पर न चलकर भटकती है, तो जीवन भी भटकती है और उसमें बैठे हुए यात्री भी भटक जाते हैं। अतः अनुशासन में अथवा अनुशासन पर चलने की आवश्यकता है।

"आपको विजय के उपलक्ष्य में यह अनुपम सुन्दरी भेंट देने के लिए लाये हैं। आप उसे स्वीकार करें।"

शिवाजी ने यह सुनकर और उसका अनुपम सौन्दर्य देखकर कहा—“मैं इसे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ? अगर मेरी माँ इतनी सुन्दर होती तो मैं भी सुन्दर होता। जाओ, इसको सम्मान सहित इसके पति के पास पहुँचा आओ। और मेरे जेब में यह लिखित शुभ सन्देश दे देना।”

उक्त महिला शिवाजी के दृढ़ व्रत को देखकर दग रह गई। उसने हाथ जोड़ कर सम्मान ज्ञाने पति के पास पहुँची। शिवाजी के उत्तम चरित्र से वह महिला अत्यन्त प्रभावित हुआ।

यह है श्रावण में अष्टम तिथि का प्रभाव।

देते हैं' (अर्थात्-मुग्धन, यज्ञ, उपनयन, नियम, व्रत ग्रहण) अर्थ में है। इस दृष्टि से नियम और व्रत प्रत्येक करने के अर्थ में दीक्षा शब्द का प्रयोग होता है। दीक्षा एक प्रकार की जिम्मेवारी है। इसी प्रकार व्रत ग्रहण करना भी एक उत्तरदायित्व है जिसे लेकर मानव अपने जीवन को निर्विघ्नता में मकुशल पार कर लेता है। महाराष्ट्र गांधी न जय राट्टेबा का व्रत लिया तो उन्होंने इस व्रत की जिम्मेवारी सम्भाल ली। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी तम्बूरबा को कह दिया कि अब जबकि हमने राट्टेबा का व्रत ले लिया है तो हमें अब मन्वान पैदा करने का अधिकार नहीं। एक राट्टेबा का व्रत लेने और दूसरी ओर बच्चे भी पैदा करते जायें, यह अपने लिए बुरा मानना। अब मेरी इच्छा पुण व्रतानयनव्रत स्वीकार करने की है, तो क्या मैं इस इच्छा को पूरा कर सकती हूँ? कम्बूरबा का इसके लिए तैयार थी, उन्होंने पुण व्रतानयन व्रत लेने की स्वीकृति दे दी। उसके बाद गांधीजी ने स्वयं राट्टेबा का व्रत लेने का तात्पर्यनाम भी कहा — 'अब तुम केवल अपने ही व्रत को पूरा करने के लिए तैयार हो जाओगी अभी बाक़ तुम्हारे पुत्र-पुत्रियाँ हैं।'

इस प्रकार व्रत भी उत्तरदायिता की जिम्मेवारी निभाई। यह शास्त्र के साथ ही समाज के धर्म-नियमों के अन्तर्गत व्रत ग्रहण को भारतीय संस्कृति में एक प्रकार की

आपसा समन लिया जाय ? त्यों हम अपनी स्वतंत्र उच्छाओं को दवाएँ ? ऐसा जीवन, जिसमें पग-पग पर अनेक वधनों में अपने आपको जकड़ लिया जाता है, नीरस, मनुष्य और मृता-मृता बन जाता है। उस जीवन में एक नया अहंकार जो दूसरों में अपने को उत्कृष्ट मानने एवं मद के नशे में ओतप्रोत होता है, पैदा हो जाता है। इसलिए हम ग्रहण करके अपनी स्वतंत्रता पर चोट करना बहुत हानिकारक है।

एक ऐसा प्रवचन सम्प्रदाय भी है, उसका कहना है कि अमुक नियमों का पालन करना उचित है, पर उसमें लिए हम लेने की क्या आवश्यकता है ? व्रत लेना मन में निर्मलता सुचित करता है और हानिकारक भी हो सकता है। उसका कहना है कि किसी व्रत का लेने के बाद यदि वह अडचन पैदा करता हो और पापस्पृह उत्पन्न हो तो उसे पकड़े रहना तो और भी अधिक गतिरहाक होगा। ऐसी हानि न होकर व्रतों का पालन करना चाहिए। इसलिए हम नगैरह जजात हैं भारभूत हैं। हमें उन व्रतों वधनों से बचना है। ऐसे लोग यह आशेष भी करते हैं कि व्रतों के और पर ध्यान न पीना चाहिए। इसलिए नहीं पीनी चाहिए, पर कभी-कभी पीना भी चाहिए। इसकी शक्ति उसे पीने में क्या हर्ज है ? उसे न पीने का क्या फायदा है ? व्रतों के पालन के समान है। जो बात धरान के बारे में ने कहो है वह व्रतों के पालन के बारे में कहते हैं। उस भी भगार्ड के लिए क्यों न नोता

सक्तता । इसलिए व्रत बन्धन नहीं, अपितु अपने जीवन के गठन, दृढ़ निश्चय, बीरता एवं समाज विश्वास के लिए स्वेच्छा से स्वीकार है ।

मृजे कई आध्यात्मिक लोग ऐसे भी मिले, जिन्होंने कहा—“हमने ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लिया, फिर भी हम ब्रह्मचारी हैं, हम गत्य आदि व्रत लेकर अपने का नाटक बौध्दने नहीं, हमें सत्य प्रिय है, इसलिए हम उसका पालन करते हैं।” मैं उनसे कहा—सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में समूह की साक्षी में व्रत ग्रहण बिना समाज एवं राष्ट्र को कोई प्रतीति नहीं होती, व्रत ग्रहण न करने वाले का मन जितनी भी समय ढीला हो सकता है । इसलिए लोकप्रतीति के लिए समूह में व्रत ग्रहण करना आवश्यक है ।

करना चाहिए । हम ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, अप्रवाल वैश्य हैं अथवा हरिजन या वंशज हैं, हम इन्हें कैसे ग्रहण कर सकते हैं ?

यह कहने वालों ने धर्म के सार्वजनिक स्वरूप को नहीं समझा है । अहिंसा, सत्य आदि धर्म के अंगों या व्रतों पर किसी की वपौनी नहीं है, किसी एक ही धर्म-सम्प्रदाय का उस पर अधिकार नहीं है, न किसी एक जाति, कुल, कौम, प्रान्त, राष्ट्र या देश का ही उनके पालन पर प्रतिबन्ध है, और न ही किसी समय या परिस्थिति में उन व्रतों का पालन असम्भव या ये अप्राप्त्य हैं । सभी धर्मसम्प्रदायों, तमाम देशों, सम्मन जानि-जीमों, सर्व राष्ट्रों, प्रान्तों या क्षेत्रों में, सम्प्रदायों में, व्रतों का पालन हो सकता है । जैनधर्म ने महाव्रतों या अगुव्रतों के पालने पर किसी भी व्यक्ति, जानि, देश, काल आदि का प्रतिबन्ध नहीं लगाया है ।

वात महाव्रतो के पालन के सम्बन्ध में कही गई है, वही वात अणुव्रतो तथा अन्य उन व्रतों के पालन के सम्बन्ध में समझ लेनी चाहिए। इसलिए व्रतो को सार्वभौम कहा गया है।

जीवन में व्रती श्रावक को भी सदा जागरूक रहकर व्रतों का पालन करना आवश्यक है। समस्त भूमिका के लोग व्रतों का ग्रहण और पालन कर सकते हैं। एक गार चतना मिगारी हो, मजदूर हो, या झोपड़ी में रहने वाला गरीब हो, चाहे एक महलों में रहने वाला राजा हो, धनकुबेर मेढ हो, या जमींदार हो, सभी इन व्रतों का ग्रहण, आराधन एवं पालन कर सकते हैं।

उन श्रावक हैं

February 1998

100

4

➤

1943-44

2

2

う
そ
せ

10

1

1

बताया था। अगर आज विभिन्न राष्ट्रों के नेता एवं राजनीतिज्ञ व्रतबद्ध हो जायें और व्रत के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय आचारसंहिता को स्वीकार करले तो विश्वशान्ति के दान निकट भविष्य में ही हो सकते हैं। व्रताचरण का मार्ग जीवनपथ के रूप में स्वीकार करने पर व्यय के मर्षण और अज्ञान्ति की सम्भावना नहीं रहती। क्योंकि अहिंसा का अर्थ यही है कि प्रत्येक नर-नारी के हित साधन का समान विचार रखा जाय तथा अधिक से अधिक मात्रा में कारगरूप में आत्मानुभूति के अवसर प्रदान किये जायें। इसलिए विश्वव्यवस्था की दृष्टि में व्रतबद्धता बहुत ही आवश्यक है। व्रतबद्धता ही राजनीतिकी के लिए नींव है, जो उन्हें उत्पथ पर जाने से रोक सकती है।

मनोबल क्षीण कर लेता है। फिर तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधानुसार व्रत का तर्पण निश्चित करके उसे ही आदर्श मान लेगा। इसप्रकार व्रतो की मूलस्पर्शी आदर्श व्याख्या को कम करके उन्हें मूल स्थान से नीचे उतार देना अपने पतन को न्योता देना है। वैसे देखा जाय तो जो पूर्ण है, वही सत्य है, वह आदर्श है, जो अपूर्ण है, वह आदर्श नहीं होता। आदर्श का मार्ग सीधा है ऊर्ध्वगामी है, और आदर्श को नीचे गिराने का मार्ग अप्रगामी एवं टेढ़ामेढ़ा है। उसमें मनुष्य छटकने का द्वार खूँझता रहता है।

महात्मा गांधी यद्यपि माघु नहीं बने थे, तथापि गृहस्थ जीवन में रहते हुए उन्होंने व्रतो का आदर्श समझ लिया था। वे जानते थे कि पूर्ण आदर्श इस जीवन अशक्य है, लेकिन आदर्श को लेखमात्र भी घटाना उन्हें पसंद नहीं था। व्रत आदर्श प्राप्ति की सम्भावना न होने के बावजूद भी भरसक प्रयत्न करने में वे कभी कटने नहीं थे।

उमीनिर् मैं आपमें पुन पुन कह रहा हूँ आप अपने आदर्श को छोटा या ठीक मन् बनाइए। आदर्श को छोटा या क्षीण बनाने से क्या नतीजा होता है, इस पर मुझे एक रोचक दृष्टान्त याद आ रहा है—

“अब शीघ्र ही अपने मार्ग का कांटा साफ हो जाएगा।” यद्यपि राजा ने अन्तर्मान में मनोरथ इस लड़के के सामने कई बार दोहराया था, किन्तु अब उन दरबारियों व बहकावे में आ जाने से उसकी मति फिर गई। राजा पर से उसका विश्वास डगमग गया। और एक दिन मुँह लटकाए हुए वह राजा के पास पहुँचा। राजा ने प्यार से पुनः पुनः पूछा—“कहो बेटा! आज उदास क्यों हो? क्या किसी ने कुछ कह दिया?”

लड़के ने रोनी मी मूर्त बनाकर कहा—“पिताजी! आपकी ओर माया की मुझ पर बड़ी कृपा है, मुझे किसी ने कुछ कहा नहीं है। किन्तु जब मैं स्वतन्त्र भविष्य के बाटे में मोचता हूँ तो मुझे अपना भविष्य धु धला-सा नजर आता है।”

राजा बोला—“निश्चिन्त होकर माफ-साफ कहो, तुम्हें क्या चाहिए?” राजकुमार ने कहा—“अब तक मैं आपके अधीन रहा। मैंने अपना स्वतन्त्रता के लिये अपना कोई विचार नहीं किया। अब मैं चाहता हूँ कि मैं स्वतन्त्र हो सकूँ। स्वतन्त्र होकर अपने भाग्य अजमाऊँ। इसके लिए मुझे दस-तीस हजार रुपये चाहिए। मैं स्वतन्त्र मकान में रहकर स्वतन्त्र जीवन-यापन कर सकूँ, इसके लिए मुझे एक स्वतन्त्र मकान मिल जाय, और मैं अपना गृहस्थाश्रम स्वतन्त्र रूप से कर सकूँ। इसके लिए किसी भी दाम्नी या साधारण कन्या के साथ मेरा विवाह कर दिया जाय।”

करने जायेंगे तो वह चिन्तन व्यवहार-दृष्टि से होगा, उसमें अनेक विकल्प मड़े हों जायेंगे, ऐसे देहसापेक्ष चिन्तन से आदर्श का मर्यादित रूप ही ध्यान में आएगा, वह निश्चित ही अपूर्ण होगा। इसके विपरीत आत्मा को साक्षी रखते हुए निश्चय दृष्टि में आदर्श का चिन्तन करते हैं तो वह देह-निरपेक्ष चिन्तन होगा, वह अमर्यादित और परिपूर्ण होगा। जैसे अहिंसा व्रत का पालन करने में देहसापेक्ष चिन्तन करते हैं तो विभिन्न जीव व उनके शरीरादि विकल्प सामने आएंगे और 'न मारने' तक का ही आदर्श सामने आएगा, जो अपूर्ण है। सभी आत्माओं को अपनी आत्मा के समान समझना—इस प्रकार का अहिंसा का सर्वभूतात्मभूत पूर्ण आदर्श उम चिन्तन में सामने नहीं आएगा। यानी देह भिन्न, निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति अथवा समस्त जीव दृष्टि के प्रति परमात्मभावना की दृष्टि अहिंसा का पूर्ण आदर्श है, जो निराय दृष्टि देहनिर्पेक्ष भाव में आदर्श चिन्तन करने में आएगा। ब्रह्मचर्यव्रत पालन का देहसापेक्ष व्यवहार-दृष्टि में चिन्तन करते हैं तो कामवासना पैदा न होना या वीर्य क्षय न होना उतना मात्र करें सामने आएगा, जो पूर्ण आदर्श रूप नहीं है। पूर्ण आदर्श रूप तब ही देहनिर्पेक्ष-साक्षात्-दृष्टि में करने पर ब्रह्मचर्य का अर्थ—शुद्धात्म (ब्रह्म) में विराट् रहना ही पूर्ण अर्थ सिद्ध हो सकेगा अथवा आत्मरूप मानना होता है, जो पूर्ण आदर्श है।

—न ऽहलौकिक प्रयोजन से धर्माचरण करे, न पारलौकिक प्रयोजन से चरण करे, और न कीर्ति, प्रशंसा, प्रशस्ति आदि की आकांक्षा से धर्मानरण केवल आर्हन्त्यद (वीतराग-परमात्म पद) की प्राप्ति के कारणों से धर्माचरण करे

यही व्रताचरण के विषय में समझना चाहिए । भय से, लोभ से या अन्य रागादि प्रयोजन से व्रत-पानन करना उचित नहीं है । आत्मा में शान्ति, सम-व्यवस्था ही प्राप्ति के लिए ही व्रतपानन श्रेयस्कर है ।

व्रतमात्रा का मरुत ज्ञान

उस प्रकार व्रतपालन के लिए सतत गतिशील रहने एवं अन्त तक निरन्तर प्रयत्न करने रहने में ही व्रत की सार्थकता है।

व्रती बनने की योग्यता

अब आपका यह सलीमाँति समझ लेना है कि व्रतधारी कौन हो सकता है। यदि आप चाहें महाजन ग्रहण करें, चाहें अणुव्रत, उसके लिए सर्वप्रथम तीन प्रकार के शल्य न त्याग करना जरूरी है। शल्य तीनों काँटे या तीर को कहते हैं। तीराटा या तीर की नोक जब शरीर में चुभ जाती है तो प्राणान्तक पीड़ा देती है, उसी प्रकार व्रत ग्रहण करने वाले को ये तीनों प्रकार के शल्य जिन्हीं मर देते रहते हैं, उसी आत्मा को शान्ति प्राप्त नहीं होने देते, न आत्मा का विचार देते हैं। इनसे अनन्तक ये शल्य हैं। उसीलिए तत्त्वार्थसूत्रकार ने व्रती मायिक शल्यग्रहण करने नहीं दे—'नि शल्यो व्रती' अर्थात् व्रती साधक को सर्वप्रथम शल्यग्रहण करना चाहिए। शल्य तीन प्रकार के हैं—मायाशल्य, निदानशल्य और भि

श्रोता प्रश्न सुनते ही पहले तो चकराए । फिर एक श्रावक ने कहा—“महा-
राज ! यहाँ से लाहौर जाने का रास्ता तो एक ही है, उसी दिशा में जाना पड़ता है
और यात्री कई प्रकार के हो सकते हैं—कोई यात्री रेलगाड़ी में जाता है और कोई
हवाई जहाज में । पहुँचते दोनों ही लाहौर ह । एक देर में पहुँचता है, दूसरा तीस-
रानि में पहुँचता है ।”

“भाइया ! उसी तरह मोक्ष जान का रास्ता तो अहिंसा आदि प्रतीति ही है । सभी मोक्षपथ के पथिक अन्त में मोक्ष पहुँचते हैं । एक द्रुतगति में मोक्ष पहुँ-
चता है, दूसरा धीमी गति में पहुँचता है । मोक्ष-यात्री दोनों ही हैं, पर दो विभेद
हैं । एक विमान यात्री की तरह तीव्रगामी यात्री है, दूसरा रेलयात्री की तरह मन्द-
गामी यात्री है । उसी प्रकार महाप्रतीति और अणुव्रती को समझो ।” मन्त्र ने श्रावक
को समझा दिया ।

जो ममान की ममत्त आत्माओं को दुःख होता है, इसलिए अहिंसा, सत्य आदि मर्म
 का आत्मोन्मय या सर्वभूतात्मभूत बनने के लिए है । बाह्य दृष्टि में पालन करने में
 मुक्ति या भी अपथा में प्रत्येक व्रत के पीछे कल्पनाएँ भिन्न-भिन्न हैं । वैसे ममी व्रतों का
 समावेश हिंसा में ही हो जाना है । असत्य चीजें—दूसरे की आत्मा को अपमान
 पहुँचाना है, चारों तरफ भी दूसरे के प्राणों को हानि पहुँचाना है, अस्वच्छन्द
 सम्पत्ति-म पचन्द्रिय जीर्ण का घातक है, पशुग्रहवृद्धि भी दूसरों को अभाव में डाल
 देती है न पीडाकारक है, इसलिए हिंसा के विवाय जेप चारों पापों (जामाते)
 का समावेश हिंसा में है और अहिंसा हिंसानिरोधनी है, इसलिए जेप चारों पा
 र्श्वहिंसा का सम्मत् आ जान है ।

उनके ४६ भगों^१ में से श्रावक त्याग की मर्यादा की अपेक्षा ८ प्रकार के होते हैं—

- (१) दो कर्ण तीन योग में हिमाद्रि का त्यागी
- (२) दो कर्ण दो योग से " " "
- (३) दो कर्ण एक योग से " " "
- (४) एक कर्ण तीन योग में हिमाद्रि का त्यागी ।
- (५) एक कर्ण दो योग में " " "
- (६) एक कर्ण एक योग में " " "
- (७) उनगुणगारी श्रावक जिसमें भग नहीं है ।
- (८) भर्त्ता श्रावक, जो व्रत ग्रहण नहीं करता, केवल सम्मात्मी रहता है ।

सम्बन्धी को वचन में और काया में किसी पाप की अनुमति नहीं देता, किन्तु उन्हें साथ रहने, परिचित होने या उसके सम्बन्धी होने के नाते उसकी मूक अनुमति तो ही जानी है। वह स्वयं स्थूल हिंसा आदि नहीं करता, दूसरों से भी नहीं करता किन्तु ग्राहस्थ्य त्यागी न होने के कारण उसने अपने परिवार में ममत्व भाव का छेदन नहीं किया है, अतः परिवार में पुत्र-पौत्र या और कोई परिजन हिंसादिकर्ता हो तो वह उन्हें न तो महमा स्वयं छोड़ सकता है, न उसके साथ परिचय का भी महमा त्याग कर सकता है।

अतः गृहस्थ श्रावक अपने साथ रहने वाले पुत्र-पौत्रादि को हिंसादि करने से रोकना नहीं न हिंसादि करवाता है, तथापि उनके साथ रहने के कारण उनके द्वारा की गई हिंसादि में समर्पण ही नहीं लगता। कभी-कभी उसे गृहस्थ कार्य के निष्कर्ष में देनी पड़ती है। उदाहरणार्थ—दो करण तीन गोग से व्रत स्वीकार करने में हिंसा में रहा—उठो, भोजन कर लो। किन्तु गाने वाला राज्याधिकारी है। उसे वह मानविक भोजन गिलाकर अपनी ओर मोड़ भी सकता है। यदि वह राज्याधिकारी है, वह उक्त श्रावक के यहाँ ठहरा है, भोजन के लिए वह राज्याधिकारी के पास में जाकर अभय पदार्थ माता है, या अपेक्षित पदार्थ माता है। श्रावक उसने साथ मर्यादा सम्बन्ध तोड़ ही देता है तो तो उसे मन्मार्ग पर लाया भी जा सकता है। अतः श्रावक को मन्मार्ग पर लाया भी जा सकता है।

जाति के अधिकांश लोग स्थूलहिमा न करेंगे, न करावेंगे, इस बात का तो वह ठेक है मकता है, लेकिन जो जातीय लोग हिमा करते-कराते हैं, उनके साथ सम्बन्ध होने में अनुमोदनजनित हिमा में वह बच नहीं सकता। इस बात को लक्ष्य में रखकर ही गृहस्थ श्रावक के लिए कहा गया कि वह किसी भी जाति में रहकर स्थूलहिमा न दो तथा तीन योग में त्याग कर सकता और श्रावकत्व निभा सकता है। उस पक्ष की श्रावक विधि में उसके समान व्यवहार में कोई रुकावट नहीं आती।

उस लोग यह कहा करने है कि जैनधर्म के उन अणुव्रतों का पालन हो बिना गृहस्थ, एताकी लांभमेवक या विधवा भले ही कर ले, धनिक, मत्तारि, श्रान्-पूरे परिवार वाले गृहस्थ उन व्रतों का पालन नहीं कर सकते। वे तब के निरमो में जकड़ जाने के कारण उन व्रतों को निभा नहीं सकते। परन्तु वे निरमो की तमी के कारण ही ऐसा कहा जाता है। जिस गृहस्थ को थोड़ा-थोड़ा उपासना करना है, देह और देह में सम्बन्धित पदार्थों पर से आसक्ति हो, उस उपासना में समर्थ करना है, उसे इस विधि में व्रत लेकर अपना धर्म निभा नहीं सकेगा। चित्ती भावना भवभ्रमण में छूटने की एवं आत्मार्थ की उपासना-उपासना परमात्मा की उपासना अपनी गार्हस्थ्य में निमित्त है। इस विधि में व्रत ग्रहण करने पर उसके पालन में कोई रुकावट नहीं है। जो श्रावक पापजन्तु सत्तो, दुर्गमनो, अनावश्यक श्रावक में उपासना करने में निमित्त भाव में भयोपार्जन, अमत्यावरण में उपासना करने में निमित्त भाव का तो त्याग करना ही होगा। पर अन्तर्गत में उपासना करने में रुकावट नहीं पड़ेगी।

जो श्रावक श्रावक गृहस्थ में प्राप्त मनी बातें स्पर्श कर ही है, उपासना करने में निमित्त भाव और अपनी आत्मा पर उपासना करने में निमित्त भाव का तो त्याग करना ही होगा।

माधु रहलाने वालो की कमी नहीं है। प्राचीनकाल में भी भारतभूमि में प्रचार के माधु थे, और आज भी हैं। अतएव किसी वेशधारी या क्रियाकाण्डी को या श्रमण कह देंगे मात्र में किसी निश्चित अर्थ का बोध नहीं होता। इसी दृष्टि वैज्याप्तो में माधु या श्रमण की सम्यक् रूप से पहचान भी बतला दी गई है। नामान्तरण पंच महाव्रतो (हिंसा, अमत्य, अदत्तादान, अव्रह्मचर्य और परिग्रह) का सर्वथा तीन करण तीन योग से त्याग करना) का पालन करने वाला ही श्रमण माना कहना है। परन्तु उन पाँच महाव्रतो को स्वीकार कर लेने मात्र में कोई व्यक्ति श्रमण या माधु नहीं रहलाता। और न ही पंच महाव्रतो के स्वीकार मात्र ही से वेद एवं क्रियाकाण्ड में ही किसी व्यक्ति को माधु या श्रमण के रूप में परिचित हो सकता है। उनके लिए एक कमीटी बनार्हि गई है—उत्तमाश्रयन सूत्र के अनुसार—

लाभानामे मुहे-दुक्खे जीविए-मरणे तहा।

ममो गिदा पससासु तहा माणावमाणओ॥

—हिंसा आदि के लाभ में और अलाभ में, मुग-दुग में, जीवित में और मरण में तथा मान और अपमान में माधु समझाती होता है।

इसी में निरम परिचिन्ति हो, तैसा भी विकट वातावरण हो श्रमण ही बन सकता है। मरण हो या दुग में, जीवित रहे या मृत्यु पर भी समझाती है। मान और अपमान, किसी भी हात में श्रमण ही बन सकती है।

इस प्रकार यह है कि उपाय या विकास के लिए दूसरो पर निर्भर नहीं रहना। कोई भी दूसरा व्यक्ति या शक्ति नहीं चाहिए। अपने उत्थान-गतन के लिए अपने ही हाथों से।

‘ममो गिदा पससासु तहा माणावमाणओ’—यदि पससासु तहा माणावमाणओ, तब ही श्रमण बन सकता है, अतः जाननी चाहिए कि ‘ममो गिदा पससासु तहा माणावमाणओ’ का अर्थ है—

‘ममो गिदा पससासु तहा माणावमाणओ’ का अर्थ है—

‘ममो गिदा पससासु तहा माणावमाणओ’ का अर्थ है—

यह गुनकर बादशाह हर्ष से उछल पड़ा और कहने लगा—“बाह रे गुनार पुत्र ! तूने अपनी सुगन्ध उस मिट्टी में डाल दी ।”

जिम प्रकार गुलाब की सेवा से मिट्टी में सुगन्ध आ गई, उसी प्रकार भक्त की सेवा से, उनके सान्निध्य में श्रमणोपासक में समभाव, प्रणमभाव, आत्मन्यस्त स्वभाविक रूप में आ जाता है ।

सामाजिक पदार्थों के उपासक श्रमणोपासक नहीं

आप में से कई लोग शायद यह सवाल उठाएँ कि “महाराज ! हम तो वृद्ध हैं, हम में कहीं समभाव आ गया है या हम कहीं ऐसा समभाव चाहते हैं कि और पत्थर को एक समान समझे । ऐसा समभाव तो श्रमणों में ही आ सकता है वे उन पत्थर के समभाव की माधना करना भी चाहते हैं । हम तो ऐसा समभाव नहीं चाहते हम तो पुत्र की चाह है, पुत्र की चाह है, सामाजिक गुणों की चाह है । हम उनकी प्रति के लिए श्रमणों की उपासना क्यों करें ? ऐसी कल्पना मानव-जीवन के लिए उचित नहीं समझने वाले या गृहस्थ-जीवन के आदर्श को भूल जा सकने वाले हैं । अच्छा श्रमणोपासक श्रमणों की उपासना धनार्थ की नहीं करती, अस्तित्व जीवन के उच्च आदर्श व श्रमण के गुणों की प्राप्ति के लिए करता है । अच्छे श्रमणोपासक के हृदय में श्रमणों की प्रति की आकांक्षा रहती है । श्रमणोपासक (श्रावक) के लिए तीन मनोरथ इस प्रकार हैं—

१. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

२. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

३. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

४. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

५. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

६. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

७. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

८. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

९. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

१०. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

११. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

१२. श्रमणों की सेवा करना, जो मैं वास्तव में आत्मन्तर परिकर है ।

स्कार करेगा। मन्वा श्रमणोपासक केवल वेप को सिर नहीं झुकाएगा, वह भी देनेगा, तभी उनके मामने नतमस्तक होगा, उपासना करेगा।

आवश्यक नियुक्ति में कहा है—

कि पुच्छसि साहूण, तव च नियम च, बंधवेर च।

किमी साधु ने एक श्रमणोपासक से पूछा—“साधु के बारे में तुम क्या कहेंगे ? उनके तप को, नियम को और ब्रह्मचर्य को देखो। केवल वेप और काण्ड को मत देखो।” कहा भी है—

‘मेग देग भूलो मती, ओलगजो आचार’

श्रमणोपासक न कहा—जी हाँ, यही बात है। मैं केवल वेप ही नहीं, य भी देखता हूँ। त्रिपाकाण्ड और श्रमणों का व्यवहार भी देखता हूँ।

श्रमण वेप की उपासना के प्रकार

य प्रश्न यह है कि श्रमणोपासक श्रमणवर्ग की उपासना कैसे करेंगे ? श्रमणोपासक उन्मगमार्ग में हाथ-पैर दबा कर तो श्रमण की सेवा या उपासना करेगा। तब फिर तौन-मा उपास है, जिसके जरिये श्रमणोपासक श्रमण

ने आचार्यश्री ने कहा—“अगर तुम्हें धर्म और श्रमणों की सेवा करनी है जनावेदेश में श्रमणों का विचरण सुलभ नहीं, जहाँ के लोग धर्म में विमुख हों। धर्म के प्रारम्भिक आचरण के सम्मुख करने के लिए तुम उन क्षेत्रों क्षेत्रों में निवासियों को धर्म और श्रमण का परिचय देकर सुलभ कर सगे एक महान् सेवा होगी।”

"गुरुदेव ! मुझे स्वीकार है । ऐसा ही करूँगा ।" सम्प्रति ने कहा ।

गन्नात् आन्त्र आदि अनायदेशो मे, जहाँ के लोग धर्म मे विमुग एव मातु
विस्तृत अर्गचित थे, ममात् मम्प्रति ने अपने सुमटो को माधुवेप मे भेजा औ
न लोगों को उन माधुवेपी सुमटो ने श्रमणों के आचार-विचार मे परिचित क
ता उन माधुवेपी को मुज आहार-पानी देने मे अभ्यस्त कर दिया। इस
कारण उन लोगों को मुनम बनाकर वे सभी वापिस उज्जैन लीटे। उन्होंने
ममात् आन्त्र आदि अनायदेशो के लोगों को मुनम बनाने की कहानी आ
म ममात्। ममात् मम्प्रति ने आचार-विपी से उन मुनम लोगों मे पारने की
मे। ममात् ममात् पारने और उहा के लोगों को शर्मनिरण के मार्ग पर लाने
मे। ममात् ममात् पारने दिया।

शान्तु मेहता ने अपनी नम्रता प्रगट करते हुए कहा—“महाराज श्रमणोपामक का कर्तव्य निभाया है, जो मुझे निभाना चाहिए था । इसमें ब कुछ नहीं किया ।”

मुनि ने कहा—“अगर आप उम्र दिन न मभालते तो मेरी दशा क्या होती । उगनिए आपने तो मुझे नया मयमी जीवन दिया है । आपका उ। त्विना माना जाय, उतना ही कम है ।”

यह है श्रमणोपामक द्वारा श्रमणोपामना का एक प्रकार ।

4

42

वन्दना-नमस्कार किया और सविनय पूछा—“भगवन् ! आज मेरा बहोमाय है कि आपने यहाँ पधार कर मुझे दर्शन दिये । बड़ी कृपा की मुझ पर । कहिये, मेरे लिए क्या आदेश है ?” गौतम स्वामी बोले—“महाशतक जी ! भगवान् महावीर ने मुझे एक मन्देश देकर आपको मावधान करने के लिए भेजा है ।”

महाशतक ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—“भगवन् ! क्या मन्देश है, प्रभु महावीर का ?”

गौतमस्वामी ने कहा—“आपने अपने सलेगनाग्रत में दोष लगाया है । वह यह है कि एक ता आप प्रतिमाधारी श्रावक बने हैं, फिर आपने सलेगनाग्रत किया है । इस व्रत में किसी के हृदय को आघातजनक बात कहना मर्यादविरुद्ध है । आपने अपनी पत्नी को नरकगमन का भय दिगाकर आघात पहुँचाया है । अतः इस दोष की मत्तोचना एवं आत्मनिन्दा (परिनात्ताप) करके आत्मशुद्धि कर लो ।”

गौतमस्वामी ने द्वारा भगवान् महावीर का अमृततुल्य मन्देश माना और मन्देश ने मत्तोचना आदि करके आत्मशुद्धि की ।

सातव्य यह है कि ऐसे अनेक विकट प्रसंगों में जहाँ श्रमणोपासक की बुद्धि के द्वारा कोई मार्ग नहीं सूझता, आँखों के आगे अंधेरा आ जाता है, तब ही वे सत्य पर चला पड़ता है, वहाँ प्रकाशस्तम्भ की तरह श्रमण का मार्ग प्रकट होता है । यही मन्देश उसको सत्यपथ पर लाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

की कोई गलती पकड़ूँ और उन्हें हैरान करूँ, ताकि वे मुझे कुछ भी कह न सकें मेरे दोषों के विषय में वे (श्रमण) जरा भी बोल न सकें।

ये हैं—चार प्रकार के श्रावकों के रूप ! इनमें अद्वागममाणा सबने ही पद्वागममाणा बाकी के तीनों में बेहतर है।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि श्रावक ऐसा श्रोता न हो, जो उस रान में ही और उस कान में निकाल दे, अथवा वक्ता की गलतियाँ ही पकड़ने में रत रहे वह जिगर का पलड़ा भारी हो, उधर ही झुक जाय, अपनी विवेकबुद्धि में तर्क निश्चित न कर सके। वास्तव में ऐसा श्रोता होना चाहिए, जो श्रद्धापूर्वक जगत्-व्यापक शास्त्र सुने, उसमें से विवेकपूर्वक अपने लिए ग्रहण करे, जहाँ जो बात सही में न आए वहाँ जिज्ञासुबुद्धि से तर्क करके समझने का प्रयत्न करे। श्रावक के लिये ऐसा होना चाहिए, उस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उदाहरण लीजिए—

लौटे और अन्य कार्यों को छोड़कर सीधे धर्मस्थान में पहुँचे। प्रवचन का सन्तुष्टि प्राप्त था। वहाँ विराजित मन्त उन्हें भली-भाँति पहचानते थे। उन्होंने पूछा—
“श्रावकजी ! आज इतना विलम्ब कैसे हो गया ?”

श्रावक बोले—“महाराज ! आज एक मेहमान को विदा देने गया था। उस कारण इतनी देर हो गई।” किमी ने मन्त से जब कहा कि आज इतना इतना देर गुजर गया है। तब मन्त ने पूछा—“श्रावकजी ! वह मेहमान क्या जन्म लेता ही था ? अगर ऐसा था तो आपको घर पर ही रुकना था।”

श्रावक ने मथी हुई बाणी में कहा—“मैंने उसके प्रति अपना कर्तव्य निभा दिया। वह जब वापिस लौटकर आने में रहा। फिर उसके पीछे व्यर्थ ही गीतों में लग जाता ? इसलिए मैं मरघट में सीधा ही धर्मस्थान में आ रहा हूँ। अब बाणी सुनूँगा ता मेरे कान पवित्र होंगे, मेरा समय संवर एवं धर्मध्यान में कटेगा।

यह सब पक्के श्रावक का ज्वलन्त जीवन, जिसमें श्रवण के साथ ध्यान भी होता है।

अमरचन्द्रजी के अहिमात्रत की विजय हुई। चुगलखोर लोगों के मुँह बन्द हो गये। भी दीवान अमरचन्द्रजी के द्वारा अहिमात्रत-पालन को देखकर प्रसन्न हो गये।

उसी प्रकार सभी श्रावक पापकार्य से अपने को बचा लेता है। जब भी किसी पाप से या अवसर आता है तो वह उगमे नहीं चूँता। साथ ही श्रावक अपने उच्च पापघर्षों को रोकने के लिए दान, शीत, तप और भाव का आचरण करता रहता है। वह अपने जीवन में हर बात पर नियम रखता है। गाने-पीने, पहनने-ओढ़ने वगैरह का उपयोग करने में हम से हम आवश्यकताओं में वह अपना काम चलाता है। मरने या पतन पर वह भूला-प्यासा रहकर उपवास करके अपना जीवन गिना है। मोर और जीर्ण-शीर्ण वस्त्रा में गुजारा कर लेता है। परन्तु अन्तः, अन्तर्मन ही पाप के पत्र पर कदम नहीं रखता।

सत्कार दत्त (निर्वाण) को कहते हैं। गृहस्थ सभी अपने मन में कुछ भी नहीं चाहते। उन्होंने सभी मांगारी भी रहते हैं। परन्तु, कुटुम्ब-कवीरों को भी नहीं। उनके जीवन को वनस्पतियों में सुसज्जित करना है, इसलिए सभी श्रावक वनस्पतियों में रहते हैं। उपासक नाम भी 'उपासकदर्शनम्', 'उपासकदर्शनम्'।

एयं नु नाणिणो सार, ज न हिसइ किचण ।
अहिंसा समय चेव, एतावत्त वियाणिया ॥
—सूत्रकृताय १११॥

मच्च जमस्स मूल, सच्च विस्सासकारण परम ।
मच्च सग्गहार, सच्च सिद्धीइ सोपाण ॥
—धर्मसंग्रह अधिकार २, श्लोक ३३

गुणा गोणत्वमायाति याति विद्या विडम्बनाम् ।
चोर्गेणात्तीतंय पुसा शिरस्यादवते पदम् ॥
—ज्ञानाणां १३

नेव-सगव-मधन्ना, जाख-खखरम-किन्नरा ।
वभयानि नममति, दुगकर जे करेति त ॥
—उत्तराध्याय १३१

न न परिग्रा पामो पलितन्मो अनि,
न न साण म नोण ।

प्र ११॥

12

महाराष्ट्र शासन

महाराष्ट्र शासन

शिकारी अपने शिकार का पीछा करता आ रहा हो, इस प्रकार की स्थिति में यदि शिकारी उस सन्ध्या-पालक गृहस्थ में पड़ता है—“क्या तुमने किसी पशु को डाल दिया है ?” उसी प्रकार कोई गुण्डा किसी मनी-साध्वी का पीछा कर रहा है अगर कुछ लुटेरे निरपराध यात्रियों को लूटने की फिराक में हैं और सत्यपालक में पड़ते हैं—“क्या अगर किसी महिला को जाने हुए देखा है ? अथवा यात्रियों के दल को देखा है ?” इसी स्थिति में अगर सत्यपालक शिकारी, गुण्डे या लुटेरों को सन्ध्या-पालक में पकड़ लेता है, तो उस पशु, मनीसाध्वी या यात्री दल पर घोर मकट आ सकता है, उनका जीवन घोर संकट में पड़ सकता है। अब अहिंसा की जहाँ रक्षा न हो, वहाँ भी सन्ध्या-पालक वास्तव में सन्ध्या नहीं कहलाता। शास्त्रकार कहते हैं—या तो अहिंसा के अभाव में सन्ध्या-पालक मौन रहे, या उपद्रव भाव में उत्तर दे। किसी का शिकार करने के लिए सन्ध्या-पालक को रक्षा में अनुप्राणित न होने के कारण अमत्य की कोटि में आता है।

यदि वह अचौकच के सम्बन्ध में है—एक हत्यारा या पागल अचौकच को पकड़ लेना, किसी या अन्य कोई शस्त्र मांगना है, अगर वह उस सन्ध्या-पालक को डाल देता है तो ऐसा अचौकच पावन श्रियाजन्त होता है।

आकाशा और मृत्यु के प्रति अनिच्छा की अनुमति अपने अन्दर जगेगी। फिर म
गवान मराधीर की उस अनुभवपूर्ण प्रेरणा को वह आत्मासात् कर लेगा—

‘मद्ये जीवा वि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ’^१

“मद्ये पाणा पिपाउया, सुहमाया, दुक्खपडिफूला, अप्पियग्हापियजीमि”
जीविउ कामा, मद्येमि जीविय पिय।”^२

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सभी को पान
जिन्दगी के प्रति प्यार, आदर व आकांक्षा है। सभी अपनी सुग-सुविधा के लिए
सर्वस्व देते हैं अपने अस्तित्व के लिए, सभी मरण कर रहे हैं। जैसा न है, नै
रह पाती है।

अहिमा की शक्ति का कितना सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। जीवन के हर मोड़ पर अहिमा की आवश्यकता को समझकर व्यक्ति अपनाए तो उसके सभी तान्त्रिक-मान्त्रिकों सम्पन्न हो सकने हैं।

आन्मीपम्य की प्रेरणा अहिमा की पृष्ठभूमि

मैं पहले बताना चाहता हूँ कि आन्मीपम्य दृष्टि ही अहिमा की जननी है। जब मनुष्य आन्मीपम्य की दृष्टि रखकर सभी प्राणियों के साथ व्यवहार करेगा तो उसका मान्य ही उसमें अन्तर्जन्म में दूसरे प्राणियों की परिस्थितियाँ भी सामने आती हैं। अहिमा के अन्तर्जन्म हेमचन्द्राचार्य ने उम्मीदों को स्पष्ट करते हुए कहा है—

आत्मवत् सर्वभूतेषु सुख-दुःखे प्रियाप्रिये ।

हुटाना और मारकाट करके कुछ जमीन अपने कब्जे में कर लेता था। वही उस राज्य हो जाता और वह खुद बन जाता राजा। उस प्रकार वह राजा नामक मनुष्य व्यक्ति अपनी फौजों को बढ़ाकर मगठित करता और मीका देमकर सिने दूरे पर अचानक चढ़ाई कर देता और उस प्रकार वह नया राज्य भी हथियाने उस राजकीय प्रक्रिया में निर्दोष मैनिक मारे जाते, हजारों के जान-माल की हानि, जानी, परस्पर वैर बढ़ जाने और पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह वैर परम्परा नाश करने कीजिए 'नरकेश्वरी सो नरकेश्वरी' यह कहावत प्रचलित हो गई। जो मनुष्य राज्य बनना या वह उसी प्रकार हिमाकाश करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता। उस और राज्य हथगत करने में जो अपार धन हाथ आना, वह गुग, गुग्गु, गुग्गु, गुग्गु और विचार में मन होना, यानी विनाशिता में उस मन को स्वाहा करने का। नरकेश्वरी सो नरकेश्वरी, न राजा की कोई मानसिक शान्ति।

गया है कि विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को बचाना है तो अहिंसा का महान लेना होगा। सर्वोदयी मत विनोबाजी ने अपने एक प्रवचन में कहा था—

“यदि अहिंसा के साथ विज्ञान की शक्ति जुड़ जायगी तो दुनिया में स्वर्ग की जो बात ईसामसीह ने कही है, उस स्वर्ग को हम साकार कर सकेंगे। उस अहिंसा विरोधियों के हाथ में रही तो, मने ही उसका वही जन्म हुआ हो : दुनिया को स्वर्ग कर दगी।”

अतः विज्ञान के विनाशकारी तत्त्व को नियन्त्रित करने के लिए अहिंसा भी उतनी ही तेज करनी होगी। अन्यथा, विज्ञान अपनी दंड में चलता ही अहिंसा बहुत पीछे रह जायगी। अहिंसा को विज्ञान की महारत बनाने की वह विज्ञान को नियन्त्रण में रक्कड़ उसे मानवजाति का उन्नत करनी।

तीन चरण तीन योग में पालन करना विहित है। अर्थात् मन, वचन, वाया में स्व-
कारित और अनुमोदिन तीनों प्रकार में हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा का
सर्वथा पालन मायुष्य के लिए अभीष्ट है। परन्तु संसार में सभी तो अपनी
कोटि-मायुष्य नहीं बन सकने, जो गृहस्थाश्रम में हैं जिन पर श्वशुर, कु-
पुत्र-पुत्रियाँ तथा समाज एवं राष्ट्र की जिम्मेदारियाँ हैं, जिन्हें निभाने के लिए उ-
त्तम-वैदिक-धर्म-संस्कार एवं साधन-सामग्री जुटानी पड़ती है। आजीविका के
कारण वे कोई श्रवसाय या मार्ग चुनना पड़ता है, अपने व अपने परिवार की जा-
ति-सुधार के लिए पयन करना पड़ता है, तथा अपने तथा परिवार के सु-
जीवन-पयन के लिए भोजन-मद्य-आदि बनाने में आरम्भ-समागमन करना

। परन्तु इसमें वह गृहस्थ पूर्णतः अहिंसा का पालन नहीं कर सकत।
वे जीवन का और उपाय विनाने के लिए कुछ मर्यादाओं स्वीकार करने
पड़ते हैं। वे मर्यादाएँ तीन-सी हैं, उनका स्पष्टीकरण आगे समझेंगे।

जब तक वह सामाजिक ग्राहंस्थ्यजीवन के कार्यों से निवृत्त नहीं हुआ है, जब तक उस पर सामाजिक, राष्ट्रीय आदि कर्तव्यों की जिम्मेदारी है, तब तक वह अपने के मूल्म हिंसा से सर्वथा निवृत्त होने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। मनुष्य में जीवहिंसा त्याग, या अहिंसा का पालन तो महाव्रती साधु-माधवी ही कर सकते हैं। श्रावक में अभी उतनी शक्ति नहीं है और न ही साधु बनने की अभी तैयारी है। ऐसी रीति में वह अहिंसा ही और जितना बढ़ सकता है, उतना ही बढ़ता है। अतः शक्ति और शक्ति, परिस्थिति और आरोग्य आदि को देखकर ही व्यक्ति महानः साधुत्व का पालन कर सकता है।

मित्रता है, अगर वह कहता है कि मारने का मेरा कोई उपाय नहीं था, अथवा मुझे मारने की नीयत में आ रहा था, इसलिए मैंने इसे मारा था, तब तो श्रावक होने हुए भी उसे उतना दण्ड नहीं दिया जाता।

प्रश्न किया जा सकता है कि एक व्यक्ति श्रावक के जानमान पर या उपासकों पर अस्त्र लेकर आक्रमण करने आता है, उस समय उसका सामना करने के लिए उसे अस्त्रास्त्र में प्रहार भी करना पड़ता है, उस प्रहार में आक्रमणकारी मर जाता है वह मकल्पजा हिंसा है या आग्मजजा ? मकल्पजा में तो उसे मित्त के मकल्ल पत्तल मकल्लजा हिंसा के साथ दो परिणाम और किये गये—निर्गम (निर्गमोत्पन्न) हिंसा करना मकल्पजा है। उसके मित्राय विभीषण के साथ ही नीयत न करने हुए भी, कार्य करते समय प्राणियों का म...

निर्दयता का व्यवहार करने के दोषी है। वेचारे हिरण, खरगोश, लोमड़ी वगैरे स्वच्छन्द विचरण करने वाले सुन्दर पशुओं और निर्दोष पक्षियों को मारने का विधान के मित्राय कोई कारण नहीं हो सकता। भगवान् महावीर और जैनगुरुओं ने उन्हे शांत बुद्धिमत्ता में से एक बुद्धिमत् माना है। इन्हे तो सम्यक्ती श्रावक ही कहते हैं। श्रोत्रिणा आवश्यक है। तयागत बुद्ध ने अपने वचन में ही देवदत्त के जन्म में पापलक्ष्म की रक्षा करके शिकार का विरोध किया था। परन्तु वर्तमान में लोग, पापकर्म, क्षत्रिय या पश्चिम के रंग में रंगे हुए लोग शिकार को ग्राह्य मानते हैं। मगर यह निश्चित है कि निर्दोष प्राणियों के मारने का ग्राह्य नहीं बढ़ता। उल्टे, शिकार में मनुष्य की कोमल वृत्तियाँ कुल्लु जाती हैं, गान्धर्व और गृह्योक्त के गुणों का हानि होता है। इस सम्प्रदाय में ही नामक स्त्री नेपथ्य ने अपना अनन्त लिखने का बताया—

जिन्दा रहेगा तो मारेगा ही। मान लो, उन जीवों का आयुष्य बलवान हुआ ... हिंस्र जीव लाख प्रयत्न करले, उन्हें नहीं मार सकेगा। तथा उसको मार देने पर भी अगर उन जीवों का आयुष्य प्रबल न हुआ तो दूसरा कोई भी हिंस्र जीव उन्हें मार डालेगा, या वे किसी भी निमित्त से मारे जाएँगे। उसी प्रकार मरकर भी वह पुनः उसी गति में जन्मा तो फिर हिंसा करेगा। इसलिए यह भावना ही अच्छी नहीं है कि एक हिंस्र जीव को मारने से अनेक जीवों की रक्षा हो जाएगी।

कई लोग साँप या बिच्छू को देखते ही उन्हें अपने जन्मजान वैरी माना करते हैं। मूढ़ता के मन्कारवश चट से उन्हें मार डालते हैं। यह तो सरासर मकल्पी हिंसा है जो श्रावक के लिए कथमपि ग्राह्य नहीं है। ये साँप, बिच्छू, तर्तये आदि जीव तो परमात्मा के ब्रह्म के लिए बने हैं, जब उन्हें छेड़ा जाता है, या उन पर पैर पड़ जाता है। यदि मनुष्य परमात्मा के ब्रह्म का यह ब्रह्मना बनाने मारने लगे कि वे हिंस्रक हैं तो मनुष्य उन जीवों के ब्रह्म के ब्रह्मना बनाने के लिए उन जीवों को मारने के लिए नहीं बनाया गया है।

माधन सम्पन्न है, वहीं जी सकता है, वहीं रह सकता है, अगर पश्चिम के इन Survival of the fittest के सिद्धान्त को माना जाएगा तो दुनिया में फिर निरबल जीना ही मुश्किल हो जाएगा। जो अपने को आज सबल मानता है, कल को उसे सबल आकर उसे मार गिराएगा। फिर उससे भी कोई सबल हुआ तो वह उसे गिराएगा, उस प्रकार 'मत्स्यगलागल' न्याय से दुनिया में कभी शान्ति स्थापित हो सकेगी।

जगत् हिंस्रप्राणियों को मारने की अपेक्षा उनकी हिंसावृत्ति मुक्त करने पर ध्यान देना चाहिए। जैसे गाय, कुत्ता, भैंस, घोड़ा, हाथी आदि पहले जंगली पशु-प्राणी जानवर थे, किन्तु मनुष्य ने प्रेम से ही इन्हें अपनाया, और धीरे-धीरे अपने साथी और महायुक्त पालतू जानवर बना लिया, वैसे ही आज अगर मनुष्य भी प्रेम करने लगे तो सिंह आदि क्रूर जानवरों को भी पालतू और अहिंसक बना दे सकना संभव है।

अपने प्राइवेट कमाईखाने चलाते हैं, कई सरकार चलाती है। थावक न तो कमाई खाना स्वयं चलाता है, न चमलिया ही, और न ही कसाईखाने या चमलिया वट हिम्मेदार (Partner) या शेयरहोल्डर बन सकता है। कई लोग कहा करते हैं कि हम मांस या टीन में बद मांस बेचे तो क्या हर्ज है ? क्योंकि उस मांस में हार्मोन जीव तो होता नहीं, या अडे बेचे तो क्या हर्ज है ? आजकल के अडे निर्जीव होते हैं। अथवा हम चमड़ा बेचे तो कौन-सा पाप है ?

यह समझना निमित्त भूल है कि कसाईखाने में मांस या चमड़े के निरुत्पन्न होने वाले पशुओं की हत्या का पाप कसाई को लगेगा, हम तो केवल बेचने वाले हैं। पशुओं या चमड़ा और मांस बेचने वाले, सारीदने वाले, भी इस हिस्से में शामिल हैं। पाप के मुख्य भागीदार तो वे व्यक्ति हैं, जो प्रेरणा या लाज के नाम पर मांस या उत्पादन कर रहे हैं। आजकल फैशन की दृष्टि से लोग बहुत सारे चीजें बेच रहे हैं, जैसे, पन्ना, बाल, कमर का पट्टा आदि सारीदते हैं। वे सारीदते हैं कि हमारे इन कुत्तों और बिल्लियों के लिए कितने निरीह प्राणी क्रूरतापूर्वक मारे जा रहे हैं। हमें इन चीजों को ही न देखें, किन्तु उन चीजों को जो हमारे सामने आती हैं, हमें भी सोचने। मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है।

मनोभावनाओं का नाश हो जाता है, वे अपने भावी जीवन में विशेष स्वार्थियों के लोंगों के सुख-दुःख के प्रति उपेक्षाभाव रखने वाले बन जाते हैं। औपधियों के लिए जीवों की हिंसा

औपधियों के लिए जीव-जन्तुओं का वध करना भी सकलपी हिंसा है। उनके लिए 'कांड लिवर आइल' बनाने के लिए लाखों मछलियों को नष्ट किया जाता है। और भी बहुत-सी दवाइयाँ पशु-पक्षियों को मार कर बनाई जाती हैं। विन्डुर्न जहर प्राप्त करने के लिए अनेक विच्छेदों को शीशियों में बंद करके उनके मरने तक विष निकाला जाता है। कई पशुओं का रक्त, हड्डियाँ, चर्बी, अंग आदि दवाइयों में प्रयुक्त होते हैं। कुछ वर्षों पहले एक पत्रिका में पढ़ा था कि पिछले पाँच वर्षों में दो करोड़ भाप विदेशों में निर्यात किये गए हैं। वहाँ वे साप को छेड़कर जल्द पर रेजमी रंगीनी बाँध देते हैं। और उसके द्वारा उस सर्प का जहर निकाल लिया जाता है। यह विष अनेक दवाइयों में डाला जाता है। फिर उन निविष साँपों को उनकी कोमल चमड़ी में कमर के पट्टे तथा ऐसी कोमल वस्तुएँ बनाई जाती हैं। उन प्रणालियों की हिंसा सकलपी है, जो किसी भी अहिंसाप्रेमी श्रावक के विरुद्ध चिन है, जो न किसी

और गोना रा सर्वोच्च तन्त्रज्ञान पाया जाता है, जिनमें आत्म-कल्याण के लिए 'वन् सर्वमनेषु' के स्वर गूँज रहे हैं, दूसरी ओर अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए वे निरगन्त प्राणियों का मरेकाम बध किया जाता है और वह इहलौकिक या मर्त्य का मन्त्रद्वारा का स्वार्थ भी अभी पूर्ण होता नहीं, केवल पशु-पुत्राग्नियों या मर्त्य की अग्निर विहातृप्ति हो जाती है। मन्त्रमुच निरपराध पशुओं के गर्दन पर चढ़ाना या बंधने आदि नेत्र बढ़ाकर देवी पूजाओं में चढ़ाना स्पष्ट स्मार्त है यदि पर ही पृथित प्राणों में पुण्य मिलना और स्वर्ग हो जाता तो तब तो मन्त्र, देवीपूजा कभी के स्वर्ग पहुँच जाते। जानबूझकर किसी जीव को मारना ही स्पष्ट पहुँचाना, तब अहिंसा नहीं हो सकती। सभी धर्मों में उसे पता है। जो देवी, नारायण—जगत् ही माता कहलाती है, वह मना और मन्त्र पशु-प्राणियों का कल्याण कैसे करेगी? जिन देवी को परमात्मा का अंग माना जाता है, उसका उद्देश्य क्या है? उस वे उन निरपराध पशु-प्राणियों के कल्याण के लिये है? उसे पृथित कृत्य करने वालों को मन, मत्ता, गुण, कर्माणि—जिन बातों के लिए नरक किमको मिलेगा? जिस आत्मा को पशु-प्राणियों का कल्याण है, उस पर पशुओं की कुरानी (बलि) देने में कभी पशु-प्राणियों का कल्याण ही नहीं हो पाता। धर्म-ग्रन्थों में पशु-प्राणियों का कल्याण है, आज भी कई मूढ़ लोग अपनी मता

पति गया हो। अतः उस घोर हिंसा को राजा राममोहनराय ने वन्द कराया। गंगा के तट ऐसी मकली हिंसा गर्वथा त्याज्य है।

उसी प्रकार की एक कुप्रथा थी, गर्भवती मुन्दरियो की कालीदेवी के चरणों में लेनी। तिनकी और यातना होती थी, उस कुप्रथा के पालन में ? उस समय के चरित्र-गायिका ने गानन में क्रूर काली मन्दिर को नष्ट करवा दिया और मरा के लिए उस कुप्रथा की उन्मूलन करवा दी।

उसी प्रकार मारवाड एवं गुजरात में कई जगह मृतक के पीछे मर्ति-पूजन, श्राद्ध चढ़ाने और घाती-माया कूटने का भयकर रिवाज है।

आज उस गरीब और मानसिक हिंसाजनक कुप्रथा का समर्थन के लिए कहते हैं ? रोते-पीटते और घाती-माया कूटने में वहनों के शरीर का मांस चूसा जाता है, यह सब जानते हैं। आनन्द-ध्यान करने में मानसिक

करके या कराकर मयकर मकली हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं, मड़काने हैं। राष्ट्रों ने मम्यनि या नाश करने हैं, राष्ट्र का उत्पादन ठाप करते हैं, जनता में हिंसा के भावनाओं को उगारने हैं। इसमें वे जनता में द्वेष, घृणा, वैर-विरोध, भेद, अहंकार, ईर्ष्या एवं क्षुब्धभाव का वातावरण फैलाने हैं। इसलिए ये सब गाने मकली हिंसा में ही मिली जाएंगी, जिसका श्रावक को त्याग करना लाजिमी है।

दश के लिए हिंसा भी घोर अनर्थकारिणी

जोई यह शक्य कर सकता है कि जो प्राणी बहुत लट में है, जिसकी हिंसा भोग्य होने पर भी मित नहीं रही है वह अपने लट में शीघ्र छुटकारा पा ले तो उसमें भी हिंसा न हो। अथवा हमने लटपीड़ित प्राणी को लट और पीड़ा से मुक्त करने के लिए जम्हा, विष या अन्यजन के द्वारा मार दिया पाए तो ?

गण्डन किया था। एक मत और था उस युग में, जिसका मन्तव्य यह था कि सुखी लोगो की प्राप्ति बड़ी मुश्किल से होती है, इसलिए सुखी लोगो को सुखी अवस्था में दिया जाय तो वे मरने के बाद भी सुखी ही होते हैं। यह मत भी मिया है कि किसी व्यक्ति को सुखी हालत में मारने से उसे मरने की हालत में सुख होता है मरने वाले को कभी सुख नहीं होता, यह बात निश्चित है। और मरने के बाद आर्त्तध्यान होगा, दुःख और पीडा से प्राण निकलेंगे, तब मरने के बाद सुख कैसे मिल सकेगा? क्योंकि मरते समय जिसकी जो लेश्या या भावना होगी, वुग्गार ही उसकी गति होती है। इसलिए सुखी लोगो में धन ऐंठकर उनके बाद सुख का मन्त्रवाग दिया जाना निरी वचना है, ठगी है।

उसी प्रकार की धर्म के नाम पर ठगी प्राचीन युग में वागण्णीय मुग्ग पण्डो द्वारा की जाती थी। धनाढ्य व्यक्तियों से काफी रुपये ऐंठकर उनको कहा कि हम तुम्हें काट कर गंगाजी में बहा देंगे, जिससे तुम सीने स्वर्ग में जाओगे, वहाँ तुम्हें सब प्रकार के सुख मिलेंगे। बेचारे भोले-भाले अनाथों उन धर्मान्व स्वार्थी पण्डो के चारु में आ जाते थे। तत्परचात् पडे उन पण्डो में बहा देने थे। तब स्वर्ग का मार्ग इतना आसान है? तब तो वे स्वर्ग में गंगाजी में डूबकर मर जाते या अपने माता-पिता को काट कर तब स्वर्ग में गंगाजी में डूबकर मर जाते, जिन्होंने उन्हे धीरे स्वर्ग मिल जाय।

एक नगर ग्राम या मुहल्ले का दूसरे नगर ग्राम या मुहल्ले के साथ घृणा, द्वेष, ईर्ष्या-मार्ग एवं अहंकार में समस्त सम्मिलन है तो वहाँ चाहे बाहर से आप कितनी ही अहिंसा का प्रयत्न कर लें, जीवदया का कार्य कर लें, अन्दर में आपके जीवन में वह अहिंसा की छवि नहीं आएगी।

कोई कह सकता है कि जब तक ये जातियाँ, वर्ण, वंश, प्रान्त, राष्ट्र धर्म सम्प्रदाय अलग-अलग रहेंगे, तब तक मानव-मानव में भेद रहेंगे और ये भेद मानव को अपने-अपने भेद के साथ स्वत्वमोह, स्वार्थ और द्वेष-घृणा आदि की प्रायः सभी बुराइयों से भरने के लिए तैयार हैं। उनके कैसे हटाया जा सकता है? वास्तव में जैनधर्म ने अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ (जीओ और जीने दो) के निमित्त ही ऐसे दिशे हैं, जिनसे हम जाति की एकता एक ही दृष्टि में न देखकर स्वत्वमोह को छोड़ कर सभी मानवों को समानता चाहें। उन जातियों आदि को दूर करने की प्रवृत्ति को दूर करने के लिये हमें विचार विवेक से घृणा, द्वेष, मार्ग आदि हटाना पड़ेगा।

भगवान महावीर ने कठोर साधना की, उसके बाद जब पण्डितों का सम्मेलन हुआ, तब बड़े-बड़े दिग्गज पण्डितों ने अपने ब्राह्मणत्व की उच्चता का अभिमान छोड़ कर उनके चरणों में गारे भेदभाव भुला दिये। स्वयं भगवान की वाणी उतारकर जैन ग्रन्थों में सुनिश्चित है कि "हृत्किञ्चन चण्डालकुल मे उत्पन्न हुण, मैं, उनकी उन्नति करने नहीं की दृष्टिमान नहीं हो रही है। कम (घड़े में) में ही ब्राह्मण, भक्ति ब्रह्म मूल माना जाता है, जन्म में नहीं।" मेद है, जैनो ने उस नारे को नहीं पकड़ना और पहिली धर्म-सम्प्रदायों के प्रवाह में बहकर ऊँच-नीच एवं छुआछूत का पद बना लिया, जिसका भगवान महावीर ने गण्डन किया था। किन्तु जिन जैनो ने भगवान को माना निया था। अनेक माननाएँ मही थी।

होता । रात्रि-भोजन करने वालों को कई बार भोजन में विपरीत जीव के पड़ जाने = प्राणों में हाथ धोना पड़ा है । ऐसे कई प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें रात्रि-भोजन में अविवेक के कारण कई मौते हुई हैं ।

आरम्भो हिमा और अविवेक—

कई बहने गृहकार्य में होने वाली अनिवायें हिमा में बनने के लिए दूसरी कार्य करती हैं, जिनमें विवेक नहीं होता । जो गृहकार्य में अहिमा की संज्ञा में अविचिन है । उस प्रकार आत्मन्य और प्रमाद में पड़ने में आरम्भ-जन्य हिमा के कारण नहीं मिल सकता । जब तक कि खाना-पीना सबंधा न छोड़ दे, या गृहकार्य की जिम्मेदारी में निवृत्त होकर मायु-जीवन स्वीकार न कर ले ।

दूसरी बात यह है कि अपने जिम्मे का कार्य साम-ग्रह या देशगति-विपरीत करने से स्वयं बचाना बना कर बैठ जाना, मटगयती करना, सैरगयती करना, अथवा है वैदिक मर्यादा के विरुद्ध है, और उस कारण हिमा है । इसी प्रकार हिमा के कारण अविवाही में पार मघर्ष होते हैं, और ये गृहकार्य का हिमा के कारण बनते हैं । कथन बुद्धि ही मायहिमा का मुख्य कारण है ।

बेचना है। दुर्भाग्य से बच्चा गर्भ में है, वह विपाक हो गया है। ऐसे समय में क्या करें? बच्चे को नष्ट या बच्चे की माँ को या दोनों को मर जाने दे?

उस समय बरख होकर विवेकी श्रावक को वस्त्र की माँ को बनाने में
महत्ता होना होगा। वस्त्रा वृत्ति मृतप्राय है, वह बनाया नहीं जा सके
गाना है।

उसी प्रकार मान लीजिए, एक श्रावक की भ्रम के शरीर पर फोज हो गयी। उसमें स्वाद पड़ गया। तब तो कुतुबुलाने लगे। अब वह भ्रम को बचाए या मान लीजिए, तो ? इस समय में वह बचाना तो दोनों को ही चाहेगा, ऐसी बीमारी का इलाज करते-करते जानते, समझ मूल जाय, और भ्रम स्वस्थ हो जाए। यह समझ के लीजिए, उक्त मान पर अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाते, पर तब भी भ्रम के समय उन्हें बचाना का।

[illegible]

प्राणियों के वश में निपट मोतियों की माला पहन कर यदि धर्मन्याय में गलती प्रवेज करें तो क्या आपकी आश्चर्य नहीं होगा ?

बन्धुओं ! मोती कैसे प्राप्त होते हैं ? उसकी कथन कहानी सुनकर बड़ा रोमटे पड़े हों जाएंगे । बेचारे गोतागोर लोग मरजीवा बनकर समुद्र की गहराइयों में गोता खाने हैं । वहाँ कन्वोल करती हुई निर्दोष मछलियों को पकड़कर टोकरों में बाँधकर मुक्ति-ममरमन्त्र आदि हिंस्र जल-जन्तुओं में अपनी जान खर्च कर देते हैं । टोकरों में बसी हुई लागी मछलियों का डेर कर देते हैं, वे मोती के पिता-पिता-पिता-पिता बन जाती हैं, फिर उन्हें बादाब की तरह फोड़ते हैं । उनमें से चिगी-चिगी मसलती में से मोती निकलता है । उमीनिण तो मोती

का भण्डार होता है, वह जलमय मछलियों की हत्या होती है ताकि मोती निकल सके । मोती के निमित्त होने वाली मृत्यु-विधा में बड़े बड़े राजा, बड़े-बड़े सरदार, मरीदने वाला, पहनने वाला और इसे पहनने वाले सबके सब शामिल हैं, इसलिए न्यूनाधिक सब मोती के लिए लड़ते हैं । इस एक विषय की अपारम्भी श्रावणधर्मियों

और तब वह तथाकथित उच्चाभिमानियों के समक्ष न मिद्ध होता। उन्हें अवसर दिया ही नहीं गया। भगवान महावीर और तथागत बुद्ध का ध्यान इसका था। उन्होंने अपने मधो में उपासक और साधु दोनों श्रेणियों में सुदो तो बना दिया, मनुष्य को साधना करने का समान अवसर दिया विकास के लिए। उनके लिए मनुष्य को समान रूप से प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और समर्थन दिया। यही कारण कि भगवान महावीर के सघ में अर्जुनमाली, सहालपुत्र कुमकार, हरिकेशीयन मत्तारं महारण्य आदि अनेक लोगो ने गृहस्थाश्रम एवं साधु-जीवन की यात्रा की। विकास किंग और मोक्ष के अधिकारी बने।

आज का मूढवर्णिय व्यक्ति समाजसेवा की भावना से श्रावक पर पर ध्यान निरत रहन्यस्व व्यवसाय को ईमानदारीपूर्वक करता है। शरीर का काम करती थी लेकिन उस सफाई को वह प्रभुभक्ति ने भगवान राम का रूप बना दिया। उसी प्रकार वर्तमान में विविध सेवाकार्य करने वाला मनुष्य उचित धर्म रक्षित करने वाले में समाज सेवा करने की भावना रखे। समाज में उनके व्यवसाय का भी पावन होगा, जीवन में सुख-शांति भी मिलेगी।

उमास्वाति के स्वोपजभाष्य में स्पष्ट बताया गया है कि 'यजन-याजन, अन्न-पन, कृषि, वाणिज्य आदि तमाम सात्त्विक आजीविका के कर्म करने वाले ब्रह्मचारी कहलाते हैं। आचार्य अकलक भट्ट ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक में स्पष्ट बनाया है 'अल्पसावद्यकर्मार्थश्च श्रावकाः' जब श्रावक इन्हीं सब कर्मों (धर्मों) को करते हैं, ये ही अल्पारम्भी-अल्पमावद्य आर्यकर्म हो जाते हैं।

मार्गश यह है कि चाहे गफाई का धन्धा हो, चाहे उपदेश देने का वाणिज्य हो, कृषि हो, गो-पालन हो या और कोई धन्धा हो, नीतरी हो, और उपर्युक्त दृष्टि और विवेक है तो वह धन्धा अल्पमावद्य आर्यकर्म है, और धनिक। किन्तु एतन्तरूप में यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक धन्धा समाज में बुरा है, उमका चलाने वाला कोई बड़ा धनिक है, इसलिए वह धन्धा पवित्र है, समाज-मन्त्रालय कोई ब्राह्मण है, इसलिए आर्यकर्म है। कोई धनिक समाज में बेध्यालय चलाना है, और कभी-कभी समाज के गरीबों को कुछ मदद देना, या तो गाना गाना देता है, प्याऊ लगा देता है, वगैरह समाज के लोगों की तज्जें बड़ा है, जो लोग पहले उम धनिक को अनायकर्मों, अपवित्र धन्धे वाला मानते थे, परन्तु अब वे मानवीर आदि कहने लगते हैं। उमे समाज-गोमाइंटियों में ऊँचा पद दे दिया जाता है। इस पैसा हो जाने से ही व्यक्ति पवित्र हो गया।

ऐसी नयकर सकल्यी हिमा रों विरोधी हिमा मानने की भूल कदापि नहीं चाहिए ।

मयार्थ में जो अपराधी है, उसे ही विरोधी समझना चाहिए और विशेष का प्रतिकार श्रावक जिस हद तक और किस क्रम में कर सकता है ? यह मोक्ष के मान है । श्रावक के सामने आदर्श तो यह है कि किसी भी स्थूल (यम) जीव को किसी भी न की नष्ट । परन्तु आदर्श, आदर्श है, वह व्यवहार में कर, कैसे, वहाँ और निरा उतरना है, यह सम्मोक्षनया विचारणीय है । आदर्श को व्यवहार में उतारने के लिए भी विचार करना आवश्यक हो जाता है कि जिस स्थिति का वर्णन उस जन्म में जीवन में स्थितिगत रूप में कितना उतार सकता है, यह उसकी अपनी शक्ति की परिमिति समझ अन्य स्फुरण, नैतिक आत्मशक्ति आदि पर निर्भर है । यह नैतिक रूप में उस सम्मोक्षन में स्पष्ट मार्गदर्शन दिया गया है—

नच याम न पेहाए, मत्तामागममप्पणो ।

नेच वाच न सिगाय, तहप्पाणं निउजाए ॥

कई लोग अहिंसा की शक्ति पर निष्ठा न रखने वालों के व्यवहारों को देखकर कह दिया करते हैं—अहिंसा कायरों का धर्म है। अहिंसा मनुष्य को बुजुर्ग बनाकर बर्बाद करती है। उम्का महाग लेकर मनुष्य अन्याय-अत्याचार का तोड़ पतित करने चुनचाप बैठ जाता है। परन्तु यह अहिंसा का स्वरूप न समझने और उसकी शक्ति प्रगट न देखने के कारण अज्ञानजनित कथन है। अहिंसा कायर बनाती है या नहीं? यह बात वे ही कहते हैं, जो अहिंसा के वास्तविक गुणों को नहीं जानते। अहिंसा ही अहिंसा का कारण एवं पालन कर सकता है। कायर अहिंसा नहीं कर सकता। अहिंसा और कायरता ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। भगवान् ने अहिंसा की सही समझावणी पुरुष द्वारा मोक्षार्जन करते देना कर या अपने पर धारणा देना। कोई व्यक्ति चुनचाप यह कहकर या मोक्षार्जन बैठ जाता है कि मैं तो अहिंसा कर रहा हूँ, क्योंकि पतित करने में हिंसा ही सही है, अहिंसा नहीं, कायरता है। यह विचार भी गलत है। अहिंसा ही सही है, कायरता नहीं। इस प्रकार की निरर्थकता भी है।

मोरग और भय में मुक्ति । डरा हुआ मनुष्य कौन-सी धर्मसाधना कर सकता है ?
 जी अहिमा भी कोई अहिमा है ? निहत्थे लोगो ने महज अपने अहिमा के नाम :
 गान्धाय का झंडा झुकाया, उसकी तोपों के मुँह मोड़े । बहके हुए जवानों के
 वह महात्मा अपना नीना ताने खड़ा रहा । लोगो के मन बदले । गांधीजी ने
 मैं उनकी हिमा का सम्राट् गोकुंगा, आपको अहिमा की ओर मोड़ूंगा । गुरुदेव
 मर-मिटकर । मेरी कष्ट-सहिष्णुता आपके दिल को पिघलाएगी, मेरा त्याग
 जालन को रोचेंगा । भगवान महावीर ने तप-त्याग सिखाया । आगे गांधीजी
 गांधीजी ने मरना सिखाया समाज को अहिमक बनाया । दोनों गुरुदेव
 हैं ।

का भी हित ही जोर समाज का भी भला हो, समाज में भी सुख-शान्ति, सुख-सन्तान हो, उम दण्ड में भी श्रावक के जीवन में अहिंसा की सुगन्ध रहती ।

दण्ड के समय भी अपराधी के साथ प्रेम और करुणा का दृष्टिकोण रखना आवश्यक है । अपराधी को मानसिक रोगी समझकर उसका मानस उठाया जाना चाहिए । अपराधी के मानस में स्नेह, मदमावना जगाकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत सुगम होना चाहिए । अपराधी को सर्वथा मिटाने की अपेक्षा अपराधी के मन का मिटाने का प्रयत्न होना चाहिए, क्योंकि अपराधी एक मानसिक रोगी है जिसका निश्चित स्नेह, वात्सल्य एवं आत्मीयता में ही हो सकती है । यही अपराधी का सुख का मार्ग है । अपराधी के अन्तर में सुगुप्त उज्ज्वल चरित्र को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । यही चिरंजीव हिंसा का हार्द है ।

गन्ती के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो गलती चाहे छोटी हो या बड़ी
 दोष या पाप चाहे गहरा हो या मामूली, वह मिटता नहीं है। वह दोष जरूर
 बल्लभ अभिप्राय रहता होगा, उस व्यक्ति का जीवन सड़ता जाएगा।
 जिस आत्मिक मार्ग में शुद्धि के लिए सत्य अनिवार्य एवं प्राथमिक गुण
 होते हैं।

की महायन्त्रा की प्रेरणा करने वाला या उन्हें नीच लाने वाला कौन था ? नहीं तो था, यम ही तो था । अमर मृत्यु की दैवी-शक्ति न होती तो देवता कैसे कर दम्भजनित मृत्यु में मग्न रह जाते—

“देवायि तं नममति, जस्त धम्मे सया मणो ।”

जिसका मन मदा, यम में लीन रहता है, उसे देवता भी नमस्कार के उनके चरणों की धूल अपने गिर पर चढ़ाते हैं । यों ही बैठे-ठाले लोग देवता बुलाना चाहें तो क्या वह आ जायगा ? कदापि नहीं । देवता मृत्यु-शील हैं । पर वृद्ध मरति न पाग स्वयमेव गिरे चले आते हैं । उनको बुलाने की आवश्यकता नहीं रहती ।

इसीलिए मैं कहता हूँ—समाधि की जितनी भी जरूरत है, वे अमुक-उमर में समाधि लेनी, मरण उपरान्त वे भी जवाब दे देती हैं । मरण के बाद वे भी जन्म तक काम देता है, मरणयोग देता है । मरण ही प

में नीचे गिराया गया, अग्नि में जला डालने का प्रयत्न किया गया, दूने अथवा
 में बावजूद भी प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी, वह अपने हाथों
 में स्थित मन्द पर अटल रहा। अन्त में प्रह्लाद के मत्स्यबल के सामने भीतिपूर्ण
 अपनी दिग्गज-शक्तियों को हार मानी पड़ी।

मत्स्य बल : मत्स्य बलों में बढ़कर

आवश्यकमूल एवं प्रत्यव्याकरणयुक्त में सत्य की शक्ति का विस्तृत वर्णन है।
 वर्णन बताया गया है कि "मत्स्यवासी मत्स्य के प्रभाव में समुद्र या जल की गहराई में
 नहीं रहते, उसका जल तैरने योग्य हो जाता है, दिशा भूल जाने पर उसे
 मत्स्यवासी के बालों से आदि महायक मिल जाता है। अग्नि का संपर्क
 उसका भी घात-प्रकाश नहीं कर सकता। गीतता हुआ तेज, मातृ तेज, सत्य
 तेज आदि प्रकाश रूप में तेज पर उसे जला नहीं सकते। मत्स्यवासी पाँच दिशि
 जा सकते हैं और भी नहीं सकते। मत्स्यवासी शत्रुओं से चारों ओर से फिर जाते हैं
 मत्स्यवासी के पास उन विचित्रताएँ हैं। वे, शत्रु, अभिषेक, वीर आदि पाँच दिशि
 जा सकते हैं और भी नहीं सकते। मत्स्य के पाँचों ओर से भी जाते हैं।
 मत्स्यवासी के पास भी उनके समीप नौ आते हैं।"

प्राणों की बाजी लगा देना है ? उन्हें आप लोग धर्म-नाम से न पुकारना चाहें तो न कोई नाम तो पहचान के लिए देना ही पड़ेगा । पश्चिम के लोगों ने, सामग्री जीवन-तत्त्वा प्रेमियों ने उन्हें 'मत्स्य' नाम दिया है ।

ममाग्मर की समस्याओं का हल, विवादों का निपटारा, शास्त्रियों का निर्णय-व्यवहारों का निश्चय, प्रश्नों का समाधान किसके बल पर होता है ? मत्स्य बल पर ही । कौन-सी चीज है, जिसके लिए मनुष्य हँसते-हँसते मौन के मुँह में चलाता है ? जिसकी प्रेरणा ने मनुष्य अपने प्राणों को स्वीछावर करने के लिए उठाया है ? आत्म-अनिदान या पाणोत्सर्ग की प्रेरणा का जनक कौन ? कौन-सा तत्त्व या, जिसकी प्रेरणा ने गजमुकुमार मुनि ने निश्चल-भाव में अवस्थित रहकर लोकोत्तम का उत्सर्ग कर दिया ? कौन-सा ऐसा आकर्षण था, जिसने हरिश्चन्द्र को राजपट्ट त्यागकर मनी के घर विकने के लिए प्रेरित किया ? कौन-सा तत्त्व या जिसने मर्त्य पुरुषोत्तम नाम को राजपट्ट त्यागकर जनसम के लिए प्रेरित किया ? मत्स्य और मम का प्रकाश ? अगर किसी के जीवन में जगमगाता प्रकाश है तो वह मत्स्य और मम का प्रकाश ही है । मत्स्य और मम का प्रकाश ही है जो जीवन में जगमगाता प्रकाश है । मत्स्य और मम का प्रकाश ही है जो जीवन में जगमगाता प्रकाश है । मत्स्य और मम का प्रकाश ही है जो जीवन में जगमगाता प्रकाश है ।

हैं तो आपको उसका सही-सही पता-ठिकाना लिखना ही होगा। चूँक पर भी सारा टोक समझी हस्ताक्षर करने पड़ेगे। इस प्रकार जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में मनुष्य बिना व्यवहार चलना कठिन है। अब आप समझ गए होंगे कि जीवन का व्यवहार में नहीं, मनुष्य में ही चल सकता है। मनुष्य स्वाभाविक है, जबकि जन्म ब्रह्म भागित है, वह सदा हुआ है, उसके लिए दिगावट, बनावट करनी पड़ती है।

रहती है। दण्ड या निन्दा के भय से मत्तनिष्ठ व्यक्ति पहले से ही अमत्य का स्वरूप लेना छोड़ देता है। जो दुष्कृत्यो, दुराचरणो एवं दुर्व्यवहारो में बसा रहता है, वह अमान, निन्दा अपवाद आदि के आघातो में सुरक्षित रहता है। मत्ताशयी एवं मत्त निष्ठ व्यक्ति निर्भय, निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व एवं मुक्त-शान्ति में परिपूर्ण रहते हैं। वे स्पष्ट होकर व्यवहार करता है। न तो उसे कहीं भय होना है और न ही आघात। मत्त मनुष्य के सम्मान, प्रतिष्ठा और आत्मगौरव के लिए अमोघ बल के समान होता है, जो उस व्यक्ति को धारण कर लेता है, उसके लिए निन्दा, आमात और अपवाद का कोई कारण नहीं रहता। वह अज्ञानशून्य होकर समाज को आने वाला भय चीन लेता है।

गान करने का विधान किया। स्थावर जीवों की हिंसा (मूढमहिमा) का त्याग करने का विधान नहीं किया, लेकिन उसके सम्बन्ध में विवेक रखने की बात फिर है। किन्तु जिनमें अभी तक अहिंसा और सत्य के पथ पर कदम ही रखा है, उन्हें यह याद दिला दी जा सकती है कि वह अभी ही पूर्णरूप में उनका पानन करने वाले हैं। उनमें सामने अहिंसा और सत्य की विविध भूमिकाएँ हैं, अपनी शक्ति स्थापित करने के लिये उन भूमिकाओं को पार करने वह कामना आगे बढ़े, यही उचित है।

[illegible]

एक देव उसके मत्स्य की पनीक्षा करने के लिए आया और गर्जता हुआ बोला—
 अहंघ्न ! क्यों धर्म का ढोंगी बना है । अपने मत्स्य का परित्याग कर दे, अन्यथा मैं
 तेरे जहाज को समुद्र में डुबा दूंगा ।" अहंघ्न एक श्रावक था, मत्स्य धर्म के श्रद्धा-
 र्थी हुआ । उसके सामन एक और जहाज में लदा हुआ बगैडो का मान था, जो
 बड़े हुए अनेक मनुष्यों का जीवन-धन था, और दूमरी ओर था—अकेला मत्स्य ।
 निम्न परिस्थिति में भी अहंघ्न अपने मत्स्य पर हठ रहा । वह किसी भी मत्स्य
 प्रभावित न बिलम्बित नहीं हुआ । देव अहंघ्न की मत्स्यधर्म पर हठता देखकर
 आश्चर्यचकित हुआ और अपने स्थान पर खड़ा गया ।

ही हुआ। कुछ ही देर बाद हमलावर गुण्डे आए और पूछताछ करने लगे—'कौन तुम्हारे घर की जौन्ने और लहकियाँ?' उन्होंने कह दिया—'वे यहाँ नहीं हैं। वे पत्नी की मृत्युमान के यहाँ पहुँचे। उसमें पूछा—'तुमने जिन हिन्दू औरों को ले लिया है, वे कहाँ हैं? मच-मच बता दो।'

वो और बुद्धिग ने कहा—'हम मुदा की कसम नाकर करते हैं कि यहाँ कोई जौन्ने नहीं है।'

जिन भी गुण्डों को शक था। उन्होंने धमकी देते हुए कहा—'सिंह, जो जानें कि जिस में मन डालो। जटपट बता दो। हमें शक है कि वे तुम्हारे घर में निहित हैं।'

कई लोग यह कहा करते हैं, कोई कन्या अगहीन हो, कुत्प हो या भेरे तो गरीब पिता यदि झूठ नहीं बोलता है तो उस कन्या की शादी होनी ज़रूरी होगी, वनाए, उस कन्या को बेचारा गरीब पिता कब तक घर में रखेगा, उसी कन्या के सम्बन्ध में अगर झूठ बोलकर काम बनाया जाय तो क्या हानि है ?

उसका समाधान यह है कि आजकल तो लोग दलालों के भरोसे न रहकर स्वयं वह कन्या को देखने हैं, लड़के-लड़की भी एक-दूसरे को देख-संग कर विवाह ही हो सकते हैं। इसलिए कन्या के विषय में झूठ बोलने पर हमें सावधानी बतानी चाहिए, वह झूठ बोलनेवाला नहीं। मान लो, कदाचित् कोई व्यक्ति विज्ञान में अज्ञान हो उस कन्या को ऐसे बिना ही मगाई पहली कर लेता है या शादी कर लेता है, वह बच्चा जब पता चलता है, तब कन्या पर आफत आ जाती है। उस कन्या को फिर से रिवा-रिवा कर आत्मव्रत करने को विवश कर दिया जाता है। उस कन्या के विषय में बोलना गया झूठ भयानक परिणाम लाने वाला है।

आजकल इस प्रकार की चोरी बहुत अधिक प्रचलित है। जो व्यक्ति माल या टाका छालकर चोरी करते हैं, वे तो शीघ्र गिरफ्तार किये जा सकते हैं। ऐसे विनिमय चीजों को गिरफ्तार करना बड़ी टेढ़ी ग्योर है।

मिलावट की समस्या उन दिनों भयंकर रूप धारण कर रही है। गान्धेजी तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं में मिलावट करना आज आम बात हो गई है। चटिया और चट्टिया चीजें तो बाजार में सदा से बेची जाती थी, और गुण नीचे ग बहन मटंगी होती थी, नकली बनाकर भी बेची जाती थी। जैसे कपूर, केसर, चमनोचन आदि। परन्तु इस समय प्रायः सभी चीजों में नकलीपन की बात है। नमक जैसी वस्तुओं में भी पत्थर का चूरा, मिट्टी आदि हानिकारक वस्तुएं डाली हैं, जिसकी शिकायत गृहणियां बार-बार करती रहती हैं।

झट्टो में ऊब कर आत्म-हत्या करने का विचार किया। इसके लिए वह बाँ कोई विष खरीद लाया, जिसे खाकर रात्रि को सो गया। वह निश्चय करे कि आज रात को मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाएगी, पर उसके वास्तव में न रहा, जब दूसरे दिन प्रातः काल वह भला चंगा उठ सड़ा हुआ। उसे मसीह कि उस जमाने में जहर का शुद्ध मिलना भी अमम्भव-सा हो गया है।

सरकारी कर्मचारी या अधिकारी मिलावट की रोकथाम करने के लिए किये जाते हैं, उसी विशेष जान करने के लिए गुप्तचर और इन्स्पेक्टर भी किये जाते हैं, पर नतीजा बहुत कम आता है। दम बीम व्यक्ति पकड़े भी उन्हें कुछ अयेंदण्ड और कुछ महीनों की कारावास की सजा देकर छोड़ दिया गिरफ्तार देखने भी कई चालाक लोग छूट जाते हैं। यह कार्यवाही तो पता है कि आम की बूढ़ चाटने से समान है। तेसी छूटपुट कार्यवाहियों में मिलावट कैसे रुक सकती है ? प्रथम तो सरकारी कर्मचारियों में भी भ्रष्टाचार है। वे मैन्डो मामलों को रिजर्वत लेकर छोड़ देते हैं। पता को अभी के अयेंदण्ड देना भी पते तो उसे हजारों रुपये प्रतिमास की आय में में गोद लेने से पते को यह घाटे की निगाह नहीं करता।

नाग मछाफोड हुआ, अतः उस केन्द्र में परीक्षा देने वाले ४७२ परीक्षार्थियों को फल रद्द कर दिया गया।

तस्कर व्यापार : विनिमय चोरी की विभीषिका

सरकारी नियन्त्रणों, अनेक विदेशी पदार्थों पर बहुत अधिक दंड, र
इत्यादि पर लगाए गये विशेष आयकर आदि ने एक नये प्रकार के व्यापारि
को जन्म दिया है, जिसे 'तस्करी व्यापार' कहा जाता है।

उन्में बड़े-बड़े करोड़पतियों का हाथ रहता है, जो विदेशों में चोरी से
मगाने हैं और उन्में बहुत नफे पर इस देश में बेचते हैं। ऐसे पदार्थों में मां
माना है, जिनकी कीमत भारत वर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा लगभग दसगुना
है। इन पदार्थों ने बहुत से लक्ष्मीनन्दनों को विदेशों से चोरी छिपी सौदा
हाँ गान में करोड़ों रुपये कमा लेने का प्रेरित किया है। चूकि प्रत्येक मनुष्य
पर सरकार की कस्टम विभाग के कर्मचारी तैनात रहते हैं, जो बाजार में ये
वस्तु की जाँच करते हैं। पर ये तस्कर व्यापारी ऐसी-ऐसी तराईयें

उस प्रकार देश के बड़े और छोटे वर्गों में बेईमानी, हराम की बस्तियों, प्रवृत्ति दिन पर दिन वृद्धि पर है और हर एक व्यक्ति की यही मनोवृत्ति है कि वह कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक धनोपाजन कर ले। इस नीति में क्या पाप है? कैसी बदनामी होगी? अथवा देश और समाज की हानि होगी? इसका किसी को ख्याल तक नहीं आता। रिश्वत लेने वाले नौकर हो गए हैं कि अफसरों के बार-बार कहने पर भी सुनी-अनसुनी तरह काम में ढील करते रहते हैं और जब तक उनको अपनी दक्षिणा नहीं मिलती तो न कोई बहाना निकाल कर काम को पूरा नहीं होने देते। मिनिस्त्रों के पास बड़े अधिकारी ने बतलाया कि उनको किमी मामलों में निरालवानी थी, पर वह कई बार कहने पर भी नहीं निकाली गई। जेम्स एमिस्टैट उजीनियर ने कहा कि 'फाइन तीन दिन के अन्दर आता है' पर उन्मुखित हो जाय।' एमि० उजीनियर दफ्तर के तर्मचारियों के भेद में गया। उन्मुखित उसने किमी प्रकार का हुक्म देने के बजाय अपने पाम में रख लिया। उन्मुखित तो रिगार्ड आफिस भेजा। फलतः वह कर्कस तुम्हारा पादर भेजा। परन्तु तर्मचारियों ने अपने विभाग के उजीनियर के साथ भी रिगार्ड भेजा।

तो वह मानसिक चोरी कहलाएगी, जो कार्यात्मकचोरी की जननी है। जिस वस्तु व्यक्ति का वास्तविक अधिकार न हो, फिर भी मन में उसे पाने की अभिलाषा होती हो तो वह वीजस्व चोरी मानी जाएगी।

कोई मौखता है कि मैं अमुक मस्या का व्यवस्थापक बन जाऊँ। उस राज्य का मंत्री बन जाऊँ। इस प्रकार अपने पाम जो अधिकार या पद नहीं है, अभिलाषा करता है। अपने में योग्यता न होते हुए भी वैसी वस्तु या स्थिति की कामना करता है, अथवा अपार धनराशि की उच्छ्वा करता है, यह सब मानसिक या वीजस्व चोरी है।

कई लोगों का कहना है कि महत्वाकांक्षा नहीं करेंगे तो आपे निरत रह सकेंगे ? इसके उत्तर में यही कहना है कि अगर व्यक्ति में योग्यता है तो अनुकूल वस्तु या पद उसे मिले, उस प्रकार की व्यवस्था करना समाज का धर्म है, वह करेगा भी। जब समाज उस व्यक्ति में योग्यता नहीं देता है तो, वे लोग बस नहीं करता, उस समय महत्वाकांक्षी व्यक्ति पहले कामना करता है कि मैं प्रसन्न रहूँ, फिर प्रतिस्पर्धा तथा ईर्ष्या पैदा होती है और अन्त में वह चोरी करता है। उस तरह वह वीजस्व चोरी प्रत्यक्ष चोरी के रूप में प्रकट होता है।

शान्तनु बहू हाथ लेकर मेठ जी की दुकान पर पहुँचा और हाथ गिरवी उस पर रुपये देने की प्रार्थना की। मेठ बुद्धिमान थे। शान्तनु की मांग पर नम्रज ली, और कहा—“भाई ! हाथ गिरवी रखने की कोई जरूरत नहीं। चाहिए तो यों ही उधार ले जाओ।” परन्तु शान्तनु के बार-बार माग्न पर दाम ने वह हाथ अपने यहाँ गिरवी रख लिया और यथेष्ट रुपये दे दिये।

शान्तनु के चने जाने पर मेठ ने सोचा—शान्तनु ने मेरा हाथ चुग्ना उसका दोष नहीं है। इसे अन्यन्न लाचारी की स्थिति में यह हाथ चुग्ना परन्तु उसकी ऐसी दयनीय परिस्थिति देग कर भी मैंने उसे किसी पता पर न दिया, न उसे धन्य में मदद दी। एक जाति भाई व भागमित्री ! मैंने ज्ञान होता चाहिए।” जो मेरा मन ही मन परचात्ताप कर रहे थे।

टूटी ।" मतलब यह है कि बाजार-भाव से विशेष कम दाम में प्रायः आधे दाम में जो चीज मिलनी है, वह प्रायः चोरी की समझनी चाहिए । वैसे जितना काम चला जाता है या जिसे वैसे ही जरूरत होती है, उसकी चीज भी बाजारमात्र में मिलनी है, लेकिन वह इतनी मस्ती नहीं होती, जितनी कि चोरी की वस्तु होने पर दया-दिवा कर गुप्तचुप बेचने वाले लोगों की चीज के विषय में चोरी की वस्तु का मन्दह हो सकता है । अतः ऐसी वस्तु, जिसके विषय में मन्दह हो, उस करने पर भी उसके विषय में विश्वास न हो ऐसी वस्तु का न मर्यादा हो अच्छा है ।

केवल खरीदना ही नहीं, चोर की चुराई हुई वस्तु को आने पर में खाना खाना चोर डाकू आदि को अपने घर में आश्रय देना भी न केवल मर्यादा में अच्छा है, उस सब का अतिचार भी है ।

कई लोग दाकूओं या चोरों या तस्करो द्वारा चुरा हुआ, चोरी किया हुआ वस्तुओं में लागू हुआ मान घटने के साथ मरीखे हैं, ऐसे चोरों, दाकूओं या तस्करो को ही मर्यादा देना उनके द्वारा चुराये हुए मान को लेने या लाने में । इस मर्यादा के लिए मर्यादा बनाता है, प्रामाण्य है, क्योंकि उसमें तो मान का बलवत्ता ही न मर्यादा देना है ।

मर्यादा देने का अर्थ है

बाहर दोनों नाथनों को ठीक रखता है। जब बाहर के साधन खोजते हैं तो अन्दर के गोपन भी काम नहीं देते, न पवित्र एवं ऊँचे विचार आते हैं, न सत्त्व-वज्रनदार होती है, न आचरण के क्षेत्र में ही चरण बढ़ते हैं। जीवन सूना-सूना हो जाता है, ब्रह्मचर्य के अभाव में। इसलिए मानव शरीर आत्म-भाग में जोरदार नष्ट कर देने के लिए नहीं, विवेक भ्रष्ट होकर बित्तारी पर गीजन के लिए भी नहीं है, अपितु सर्वेन्द्रिय-मयम के द्वारा उत्तमोत्तम का उत्तमोत्तम करने के लिए है। यही मोने की गेती है।

मौन्य का मूल : ब्रह्मचर्य

मनुष्य कामिनी का रूप-मौन्य निहार कर उसमें लुब्ध हो जाता है। दीवाने नौ रूप पर पतने के समान अपना सर्वस्व होम देते हैं। उनके मन नहीं पहुँचा, प्रवृत्ति वे अपने ही रूप, मौन्य, मनोवृत्ति, इन्द्रियवृत्ति को अपने ही हाथों में अपने मौन्य में आग लगा देते हैं।

आत्म में काम-कृत्य के वादन मड़रा रहे हैं। मनुष्य की मृगशीर्ष की भाँती मनुष्य-कामिनी के साथ निहँसता हुआ अस्वाभाव की भाँति मनुष्य के आत्म में तना हुआ इन्द्रियवृत्ति बितना गुन लगता है। अतः आत्म-वृत्ति में उसे नीहारते ही रहे !

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं। मोने का मूल है। मोने का मूल है। मोने का मूल है। मोने का मूल है।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं। मोने का मूल है। मोने का मूल है। मोने का मूल है। मोने का मूल है।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

मौन्य का मूल है। मोने में मोने के लगे-भरे पीछे लटकाता रहे हैं।

यथा मैयुनम्' की बात क्षम्य मानी थी, लेकिन आज यदि ऐसी बहुत कम व्यक्ति नहीं हैं तो ब्रह्मचर्यव्रत का गण्डन क्षम्य नहीं माना जाता। यदि माध ममत्ता जाना चाहिए तभी वर्तमान मानव समाज उत्तम होगा, अन्यथा होगा। क्योंकि अब्रह्मचर्य के साथ अनेक अपराध, दोष अथवा शर्मिलेपनो अधर्म जीवन के साथ निपट जाते हैं। उदाहरणार्थ—ब्रह्मचर्य गति व्यक्ति द्वारा स्त्रीयौनि में ६ लाख जन्तुओं की उत्पत्ति मैयुन मेरु से होती है। के सिवाय बाकी के प्रायः नष्ट हो जाते हैं, उनलिए हिमा का दोष तो है ही। नाव तो छोड़कर उन्मियादि विषय स्त्री विभाव में रमण करना अपराध है। यदि न करने जरूर के मन्त्र तो नष्ट करना भी पाप है, अधर्म है। आदि में व्यक्ति लोभी, क्रोधी, लोभी, द्रोही, स्वार्थी आदि अनेक दोषाकाय बन जाते हैं। भगवान् महावीर ने जब पूछा गया कि आपने अपराधों को छोड़ दिया ? तो उन्होंने निम्नोक्त उद्गार बोल किये—

मूतमेयमहम्मस्य महाबोमसमुत्सय ।
 नान्य देवदेवतासु निगम्य जन्तुगति ॥ १

जीवन में प्रवेश करते ही उसका विचार आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन करने का था। अपनी माता के अत्यन्त प्रेमाग्रह के कारण मद्रदेश के कीशिक ब्राह्मण की पुत्री ने साथ विवाह सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ा। महाकाश्यप ब्रह्मचर्य पालन चाहता था, वैसे मद्रा भी आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करना चाहती थी। अनुसूचित समय की प्रथा न अनुसार दोनों को एक ही शयनगृह में, एक ही शय्या पर सो पड़ना पड़ा। मद्रा दोनों के बीच दो पुष्पमालाएँ रस देती और कर्तरी—“माला पुष्पमाला मुर्जा जाय, समझा जाणगा कि उसके मन में काम विकार उत्पन्न हुआ। माला-रिता के जीवित रहने महाकाश्यप प्रच्छन्नरूप में ब्रह्मचारी रहा। माया-विषा स्वर्गवान होने के बाद वह बौद्ध भिक्षु बन गया, मद्रा ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। वह बौद्धभिक्षुणी बन गई।

जहाँ ब्रह्मचर्य का बल होता है, उसके मस्तिष्क में छह महीने तो का, स्त्री-वर्ग पुगनी स्मृतियाँ भी ज्यों की त्यों उपस्थित रहती है । ब्रह्मचारी का मस्तिष्क अत्यन्त उबेर एव सन्नयशील होता है ।

श्रीमद्गजचन्द्रजी की ब्रह्मचर्यनिष्ठा के कारण उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी होती कि वे एक मास एक हजार अवधान कर लेते थे । 'महत्सावधानी' के नाम से प्रसिद्ध थे ।

जिस भाषा का उन्होंने अध्ययन नहीं किया था, उसमें कठिनात्मक बातें वे आसानी से स्मृतिवश से रग लेते थे, और बाद में ज्यों की त्यों कह दो देते । यह सब ब्रह्मचर्य साधना का परिणाम है ।

जैन शास्त्रों में पदानुमात्रिणी लब्धि का उल्लेख है, एक पद या पुरा पद देवने मूने ही उस सम्बन्ध में उल्लेखनीय साग विषय या उन विषयों के पद हो जाने से । जैन लिहास में आचार्य आर्यशक्ति को यह विद्या उपपन्न थी । युग में स्वामी दिवेकानन्द को भी इसी प्रकार की उपलब्धि प्राप्ता थी । लोग अज्ञान-मग्न अज्ञान पड़ता है, पर शिक्षित व्यक्ति एक ही नजर में सारी बातें पकड़ लेते हैं । स्वामी दिवेकानन्द की आँखें तो मारा पेरेप्राफ या मारा फुल मारा पकड़ लेती थी ।

समुद्र पार करने के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन कहा है। प्रसन्नचित्त हो
 बात का माधी है, वहाँ उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य के धनी तीर्थकर महावीर ने जन्म
 बनाया है कि “ब्रह्मचर्य अन्तःकरण को पवित्र व मयि रखा है, मनुष्य
 आचरित है, मोक्ष मार्ग है, मित्र गति का धाम है, शाश्वत है, वायव्य
 जन्मनाश (अपुनर्भव) है, प्रशस्त है, नागादिक का अभाव करने में मीन
 होने में शिव है, दुग्धद्रव्यादि में रहित होने में अचल, अक्षय है, मुक्ति
 मुरखिन, मुचरित, मुनिनृपित, मय्य है, मय्यजनो द्वारा आचरित है, मय्य
 मय्यहित है। त्रिगुण है, प्रपन्नो में मुक्ति दिलाने वाला, मेरु एव
 नाशक है।”

विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते नहीं मानते। प्रसन्नचित्त के मुने
 उसमें होने वाले लाभों का वर्णन करते हुए विद्वान् कहते हैं—

“ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभो मय्यपि ।
 मुरत्यु मान्यो याति चान्ते याति परा गतिम् ॥
 ब्रह्मचर्यं पालनीयं देवानामपि वृत्तम् ।
 वीर्यं मुरक्षितं यान्ति मन्तोकार्यमिन्द्रियं ।”

उस जीव को न तो धर्म, पुण्य का ज्ञान था, न बुद्धि विकसित थी, इसीलिए भोगों का मनमाना सेवन किया, लेकिन उन-उन योनियों में बलात् कटमन्य करने से पुण्यराशि बढ़ने के कारण वह आत्मा निमोद से निकलकर अन्तर्यामी योनियों में परिभ्रमण करके अनेक प्रकार के कष्ट सहता हुआ इस मनुष्य जन्म प्राप्त कर सका है। अगर अब मनुष्यजन्म पाकर भी यह पशु आदि निरिच्छा भोगे जाने वाले दुर्विषयभोगों का सेवन करे, उन्हीं में रक्षापत्ता रहे, उन्हें मनुष्य जन्ममरण से मुक्त होने का या कम से कम पुण्य लाभ का उपाय न करे, बड़कर भूल या भ्रमंता जीर क्या होगी? यह तो चिन्तामणि रत्न गोकुल टुकड़ा पाने के समान है। पशु शरीर में भोगे जा सकने वाले भोगों को भोग्य शरीर को नष्ट करना कीन-सी बुद्धिमत्ता है?

निश्चय यह है कि मनुष्य शरीर दुर्विषयों के उपभोग के लिए नहीं है, उन्हें त्याग करके समय और ब्रह्मचर्य के पथ पर चलने के लिए है। उन्हीं जन्म प्राप्त होने की मार्गरूपा दुर्विषयभोगों को त्यागकर ब्रह्मचर्य करने में है। यही कारण है कि आदितीर्थंकर भगवान् मृगमदे ने आपो ६ {१} यही उपदेश दिया था—

पुत्रो ! मेढुंभ यह मनुष्यतन दुःखदायक विषयभोगों के उपासक नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषयभोग तो पिछा जाने वाले विषय जीरो भोग्य नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह शरीर दिव्यतप भोग्या नहीं है, बल्कि यह शरीर तप तो जीरो प्राप्त ब्रह्मभूत प्राप्त ही।”

कपाट के उद्घाटन से ससार में कोई उपद्रव नहीं होता, कोई धन-संपत्ति की प्रतिष्ठा की हानि नहीं होती। सामाजिक मर्यादा रूपी बाध की दीवार के बिना अवसर नहीं आता और जीवन की पवित्रता भी सुरक्षित रहती है।

इस प्रकार विवाह-प्रथा के प्रचलन के पीछे भगवान् श्रुतमन्त्रों से या कि गृहस्थ विराट् वासना को एक पत्नी के साथ विधिवत् सनन होना और ब्रह्मचर्य की काफी अंशों में रक्षा करते हुए भविष्य में पूर्ण ब्रह्मचर्य की वामना को पशु-पक्षी की तरह उच्छृंखल रूप से सेवन करते हुए मानना-उन्होंने एक पत्नी में केन्द्रित करने की बात कही। अन्यथा, मानव की प्रकृति की भी वन जानी। इस प्रकार मूल में, श्रावक के लिए आशिक ब्रह्मचर्य ही है, विवाह के क्षेत्र में भी उनका आशय ब्रह्मचर्य रक्षा का है।

इस दृष्टिकोण को आप हृदयगम कर लेंगे तो आपको विवाह की प्रथा ब्रह्मचर्यव्रत के गृहस्थ को मनीषांति समझ सकेंगे।

गाम्भीर्य के गहन निम्न-मनन पर से मैं यह दावे के साथ कहना चाहता हूँ कि विवाह पूर्णतया दायित्व समझ कर ईमानदारी के साथ उसे निभाते हैं। यदि नहीं, तो वह भी ब्रह्मचर्य-माधना का ही एक रूप है। विवाह करके ही श्रावक के स्वामी के रूप में सिर्फ एक द्वार के मारामर के माध्यम से ही जाना जाता है। इस प्रकार विवाह के अर्थगाम्भीर्य को समझ कर जाना जाता है। सभी विवाह सच्चे माने में सार्वक होता है। तभी उमरे प्रमाण मिलता है।

भाग यानी १०० में से २५ वर्ष तक, गुरुकुल में रहकर अविलुप्त मन्त्र-पालन करके फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।^१

तात्पर्य यह है कि २५ और १६ वर्ष की आयु तक तो पुत्र-विवाह के सम्बन्ध में कुछ भी मोचना नहीं है, सिर्फ अल्पकाल के जीवन अध्ययन में व्रित्ताना है। तत्पश्चात् उन्हें अपने आपको परगना है, को विवेक के बाटो में तीलना है, अपने आपको जानना है कि मेरी जिन्दगी में कौन-सा मार्ग नय कर सकता है, कौन-सा नहीं ?

मगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य धर्म के दो रूप बताए हैं—(१) पूर्ण नियन्त्रण और (२) वामनाओं का मादा बन्धन। हमारे शरीर में ३६०० और आजिक ब्रह्मचर्य कहा जा सकता है। जिस माधक में पूर्ण रूप से कष्टोंन करने का सामर्थ्य नहीं है, वह अगर उच्छृंगलम्प में ब्रह्मचर्य को विवाह करके एक परिगृहीत पत्नी में मीमित कर लेता है, तो यह पाप नहीं करता, बल्कि आत्मा को भयकर अपतन में बसा लेता है। वामना का अनियन्त्रित रूप तो जीवन की बर्बारी है, आत्मा का पाप। माधक में यह क्षमता होती है कि मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कर सकता हूँ। इन्द्र में नहीं पड़ता। भीष्म पितामह पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने में माधक में विवश रहने का मन में विचार ही नहीं किया। यदि उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य करने की क्षमता नहीं देखी होती तो वे भीष्म पितामह नहीं बनते।

ताकि वह आग दूसरे मकानों में न फैले । यानी उस मकान की सीमा बनाकर आग को बुझाने का प्रयत्न किया जाता है । वह आग जो लगने के समय नहीं बुझती, उस उपाय में बुझ जाती है, बढने नहीं पाती । अतः वह आग अपने ही बुझाई न जाने के कारण केवल सीमान्तर्गत घर की हानि कर सकती है । आग के सीमित कर दिये जाने में अनेक मकान भस्म होने में बच जाते हैं । शास्त्रों में विवाह के विषय में कही जा सकती है । यदि मनुष्य अपने में कामाग्नि उत्पन्न न होने दे, अथवा उत्पन्न होते ही विवेक व समय द्वारा बुझा लो, पर करने की आवश्यकता ही नहीं रहती । लेकिन न दबा सकने पर वह आग ही सीमित कर दी जाए, तो वह आगे बढने में रुक जाती है । उस प्रकार हानि में बच जाता है ।

फिर उसे ब्रह्मचर्याणुव्रत या देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत नाम न दिया जाता। स्वस्त्री के साथ दिन हो या रात, ममय हो या अममय, गर्भवती हो या तनु मय होती हो, अष्टमी हो, चतुर्दशी हो, पर्वतिथि हो या स्त्रीरुग्ण, विपद्ग्रस्त, रिक्त कैसी भी अवस्था में हो, विषय-संवन किया जाता और फिर ब्रह्मचर्य का स्वीकार्य न रहता, न कोई अकुश रहता। मगर ऐसी बात नहीं है, स्वदारमन्तान स्वच्छन्दता को कोई स्थान नहीं होता।

महात्मा गांधीजी, विनोबाजी तथा भारतीय ऋषियों एवं नीतिकारों ने कहा कि विवाह करने में केवल मन्तानोत्पत्ति का ही विचार होना चाहिए। वधू की वृत्ति नहीं। कामेच्छा के वश होकर जिस मन्तान को मनुष्य जन्म देता है, वह कामज नहीं है, वह धर्मज मन्तान नहीं है। जहाँ धर्मज मन्तान ही उत्पन्न होता है, वहाँ ही विवाह का उद्देश्य हो, वहाँ ही अधिक मन्तान पैदा करने का अधिकार नहीं है।

राजका विवाहों में उत्पन्न कामवृत्ति तथा अविवाहितों में प्रसन्नता देने में मन्तान है, उस पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से प्रत्येक स्त्रीपुरुष को नियंत्रण करना चाहिए। नीतिकारों का उस विषय में स्पष्ट कथन है—

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

101
102
103
104
105
106
107
108
109
110
111
112
113
114
115
116
117
118
119
120
121
122
123
124
125
126
127
128
129
130
131
132
133
134
135
136
137
138
139
140
141
142
143
144
145
146
147
148
149
150
151
152
153
154
155
156
157
158
159
160
161
162
163
164
165
166
167
168
169
170
171
172
173
174
175
176
177
178
179
180
181
182
183
184
185
186
187
188
189
190
191
192
193
194
195
196
197
198
199
200

201
202
203
204
205
206
207
208
209
210
211
212
213
214
215
216
217
218
219
220
221
222
223
224
225
226
227
228
229
230
231
232
233
234
235
236
237
238
239
240
241
242
243
244
245
246
247
248
249
250
251
252
253
254
255
256
257
258
259
260
261
262
263
264
265
266
267
268
269
270
271
272
273
274
275
276
277
278
279
280
281
282
283
284
285
286
287
288
289
290
291
292
293
294
295
296
297
298
299
300

की तरह या गांधीजी तथा रामकृष्णपरमहंस की तरह पत्नी को माता मानना है
फिर उन दोनों के सम्बन्धों में विकार को कोई स्थान नहीं रहेगा ।

पति-पत्नी दोनों का सम्बन्ध शुद्ध, निर्विकार रहेगा । इस प्रकार वस्तु-विषय
की वृत्ति, जो दुःख की जड़ है, और पति-पत्नी के सम्बन्ध के माय जुड़ी हुई
कट जाएगी ।

उनके माय ही एक बात और विचारणीय है, वह यह कि पति-पत्नी के
प्रति भावना को बदन देने में पुरुष कामविकार में मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि
पत्नी स्त्री को देनाकर मन में विकार पैदा हो सकता है । इसलिए पत्नी स्त्री को
नाशी जानि के प्रति उत्तम ब्रह्मचर्यव्रती गृहस्थ को अपनी भावना प्रकट
आवश्यकता है । वह भावना है—मातृभावना, जो कामविकार में मुक्ति पाने के
उत्तम मार्ग है ।

रहे हैं, वह मैं आपके सामने उपस्थित हूँ। मुझसे बढ कर और कौन-सी गलत आप तप मे प्राप्त करेगे। लो, मुझे अपना कर अपना जीवन मकल प्तारो छोडो डम कायावष्ट को।

अर्जुन अपनी तपस्या में मग्न था, रम्भा को माता के रूप में देता था। अतः रम्भा ने अपना माग कोशल अजमा लिया, फिर भी अर्जुन ब्रह्मचर्य में ही भ्रष्ट नहीं हुए। आगिर रम्भा ने अन्तिम अस्त्र फेंका। वह नग्न हो कर मोन्दर्य की प्रतिमूर्ति अप्सरा ने मोहित करने के लिए देवी काल में आती है। फिर भी वह अर्जुन का वीर्य न गीन सकी, न तपोभ्रष्ट कर सकी। अतः रम्भा ने कहा—“माना ! अमर आपने उस सुन्दर शरीर में मुझे जन्म दिया है जो मैं अमर तेज आ जाना।” रम्भा लज्जित और परास्त होकर वहाँ से

अर्जुन ने जिस प्रकार ब्रह्मचर्य रक्षा की, वैसे ही शायद को भी ब्रह्मचर्य रक्षा हो महत्त्व देना चाहिए।

वीरगंज होते ही किसी पट्टि में न तो स्नान भाग लेना पड़ता है दूसरे को प्रेरित करना चाहिए । तीर्थस्था की मानना हमने तो सबका धर्म माननी चाहिए । कुम्भित विचारों को अपने पास न पालना । पुनः प्रारम्भ में प्रतीति विचार मानना, आहार-विहार मध्य भी ।

तो वे किताबें पढ़ती हैं, उस शास्त्र को अपनी मान्यता के लिए प्रमाण के रूप में प्रस्तुत नहीं हैं। न उन प्रमाणों को मान्यता देती हैं, न उन प्रमाणों को अपने प्रमाणों के साथ जोड़ती हैं। उन प्रमाणों में भी प्रमाणों के उदाहरण

ה'תש"ח

* 1 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20

1911年11月11日

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1

$$v = \frac{1}{2} \left(\frac{\partial^2 \phi}{\partial x^2} + \frac{\partial^2 \phi}{\partial y^2} \right) = \frac{1}{2} \nabla^2 \phi$$

1. $\{1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10\}$ 2. $\{1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10\}$

$\frac{1}{2}$ $\frac{1}{3}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{5}$ $\frac{1}{6}$ $\frac{1}{7}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{9}$ $\frac{1}{10}$ $\frac{1}{11}$ $\frac{1}{12}$ $\frac{1}{13}$ $\frac{1}{14}$ $\frac{1}{15}$ $\frac{1}{16}$ $\frac{1}{17}$ $\frac{1}{18}$ $\frac{1}{19}$ $\frac{1}{20}$ $\frac{1}{21}$ $\frac{1}{22}$ $\frac{1}{23}$ $\frac{1}{24}$ $\frac{1}{25}$ $\frac{1}{26}$ $\frac{1}{27}$ $\frac{1}{28}$ $\frac{1}{29}$ $\frac{1}{30}$ $\frac{1}{31}$ $\frac{1}{32}$ $\frac{1}{33}$ $\frac{1}{34}$ $\frac{1}{35}$ $\frac{1}{36}$ $\frac{1}{37}$ $\frac{1}{38}$ $\frac{1}{39}$ $\frac{1}{40}$ $\frac{1}{41}$ $\frac{1}{42}$ $\frac{1}{43}$ $\frac{1}{44}$ $\frac{1}{45}$ $\frac{1}{46}$ $\frac{1}{47}$ $\frac{1}{48}$ $\frac{1}{49}$ $\frac{1}{50}$ $\frac{1}{51}$ $\frac{1}{52}$ $\frac{1}{53}$ $\frac{1}{54}$ $\frac{1}{55}$ $\frac{1}{56}$ $\frac{1}{57}$ $\frac{1}{58}$ $\frac{1}{59}$ $\frac{1}{60}$ $\frac{1}{61}$ $\frac{1}{62}$ $\frac{1}{63}$ $\frac{1}{64}$ $\frac{1}{65}$ $\frac{1}{66}$ $\frac{1}{67}$ $\frac{1}{68}$ $\frac{1}{69}$ $\frac{1}{70}$ $\frac{1}{71}$ $\frac{1}{72}$ $\frac{1}{73}$ $\frac{1}{74}$ $\frac{1}{75}$ $\frac{1}{76}$ $\frac{1}{77}$ $\frac{1}{78}$ $\frac{1}{79}$ $\frac{1}{80}$ $\frac{1}{81}$ $\frac{1}{82}$ $\frac{1}{83}$ $\frac{1}{84}$ $\frac{1}{85}$ $\frac{1}{86}$ $\frac{1}{87}$ $\frac{1}{88}$ $\frac{1}{89}$ $\frac{1}{90}$ $\frac{1}{91}$ $\frac{1}{92}$ $\frac{1}{93}$ $\frac{1}{94}$ $\frac{1}{95}$ $\frac{1}{96}$ $\frac{1}{97}$ $\frac{1}{98}$ $\frac{1}{99}$ $\frac{1}{100}$

की भोली मूरत देखकर समझ गया कि यह कोई दरिद्र ब्राह्मण है। मनुष्य माया मोने की उच्छ्वा से उतनी जल्दी उठ-बैठा होगा। इसकी आँखों में मात्सूम कितने दिनों से इसे दो माशा मोने की लालसा भटका रही होगी।

राजा का हृदय दयाद्रं हो गया। उसने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—
“विप्र ! मैं तुम्हारी बात समझ गया हूँ। दो माशा मोने की क्या बात है, मैंने वही दे दूँगा, जो तुम मांगोगे। तुम्हारी जो भी उच्छ्वा हो माग लो।”

कपिल यह सुनने ही आश्चर्य होकर सोनने लगा—“राजा ने इतना मागने का कह दिया है, तो क्या माँगना चाहिए ?” कपिल के सामने विशाल सरोवर लहरा रहा था। उच्छ्वा हुई कि राजा ने जब इच्छानुसार मागने का कह दिया है तो दो माशा मोना ही करो मायू ? सर-यो-भर सोना माँग लो, भी तो जल्दी ही समाप्त हो जाएगा, घर के खाने-पीने के खर्च में। फिर विप्र कि वह विद्या नये वस्त्र, सुन्दर आभूषण एवं साजसज्जा के लिए प्रनाम मांगने के वस्तु कहां से आँगेगी ? अब इच्छा होती है—एक मन मोना माँग लूँ। पर दो मोरली से मोने के आभूषण क्या शोभा देगे ? एक महल हो, सभी घरों पर पशु मत्त का शाही चर्च किसी जागीर के बिना कैसे चलेगा ? एक गाँव का मन लूँ। पर गाँव से क्या होगा ? जब राजा ने इच्छानुसार मागने का कहा तो पशु मत्त की क्यों न माँग लिया जाए। परन्तु एक पशु मत्त मागने पर दूसरे गाँव के शासक ने आपत्त करके उसे रद्द किया तो ? अब राजा ने कहा कि मैंने मागने का अधिकार दे दिया है, तब तो सोना, महल, सोना, पशु मत्त माग लो।

उनकी पूति के लिए उसे व्यग्र देना तो वह वापस लौट गए । उन्होंने परमात्मा को शिष्य से कहा—

देखा रे, चेला ! बिन पाल मरवर ।

अर्थात्—शिष्य ! आज मैं एक ऐसे मरुवर को देकर आया हूँ जो कोई ओम्-छोर नहीं था ।

शिष्य ने गुरु जी के मनाभाव को ताठ कर शीघ्र उत्तर दिया—

‘इच्छा गुरुजी ! बिन पाल मरवर ।’

अर्थात्—गुरुजी ! आपने जो बिन पाल का मरुवर देता है, वह नहीं उच्छा ही है । और मरुवरों के तो पाल होता है, किन्तु वह मरुवर ऐसा है, जिसके कहीं भी ओम्-छोर नहीं होता, किन्तु होता ।’

अगर मनुष्य अपनी उद्दाम उच्छ्राओ को आवश्यकताएँ ममजने से न मने तो उसका जीवन उच्छ्रापरिमाण करने से सुखपूर्वक व्यतीत हो सकता है।

श्रमणोपासक आनन्द ने भगवान महावीर के समक्ष अपनी उच्छ्रा परिमाण (सीमा) कर लिया। उसके पास जो कुछ भी सम्पत्ति थी, उसमें वर्तमान पर उसने स्वेच्छा से रोक लगा दी। उसने अपनी उच्छ्रा और ममता पर नियन्त्रण कर दिया कि मैं अपने पास जो सम्पत्ति है, उसमें न अति माँगूँ न उसमें अधिक रगूँगा।

उस रूप में जब उच्छ्रापरिमाणजन आनन्द श्रावक के जीवन में उच्छ्रा स्वर को असीम आनन्द की अनुभूति हुई।

वास्तव में जो व्यक्ति, चाहे वह सम्राट् हो या ममनिशानी हो उच्छ्राओं उमरे प्रलयमन में पैदा होती है, उन्हें अपनी आवश्यकताएँ ममजने से न मने, तब जीवन ममता से वारण कर लेता है। उमीति, जैसा कि किसी उच्छ्राएँ, जो तुम्हारी आवश्यकताओं के साथ ममता नहीं है, और तुम्हारी आवश्यकता के भूलाने में प्रयत्न करे नही जाती है, उन्हें नही ममता है। जो उच्छ्राओं में अपने को विमुक्त कर दो। जो उच्छ्राएँ, तुम्हारी आवश्यकता से भी सीमा में नहीं तक चले मीमित करती है।

निर्धनता स्वीकार करके मादा जीवन जीने वाले भक्तों को ही परमात्म-
स्मरण हो सकता है।”

कुम्भनदाम स्वेच्छा से गरीबी धारण किये हुए थे। वे स्तने कि-
कि एक दर्पण तक भी वे नहीं खरीद सकते थे। स्नान करने के बाद जल-
की आवश्यकता होती तो किमी वर्तन में जल भर कर अपना चेहरा देते थे।

एक दिन कुम्भनदाम जलपात्र को सामने रखकर सिलक लगा रहे थे कि-
राजा मानसिंह उनके दर्शन हेतु आ गए। महाराजा ने अभिवादन करी-
कहा, उत्तर में कुम्भनदाम मात ने भी उन्हें बैठने का संकेत करते हुए कहा-
कहा। पर उम्मी हड़बडी में उस वर्तन का पानी फैल गया। आ. कुम्भनदाम-
पुत्री ने पुन. जल भर लाने का संकेत किया। राजा मानसिंह को त-
देख न पड़ी। उनको बड़ा दुःख हुआ कि एक भगवद्भक्ता दर्पण के अभाव-
पाए। राजा मानसिंह ने अपने एक सेवक को भेजकर सार्णजट्टि दान मा-
भक्तों ने बैठ करके धमा मांगी। कुम्भनदाम ने जब सार्णजट्टि दान दे-
द्वारे बोले—न न, राजन ! भगवान् के भक्त को यह बहुमूल्य वस्तु भोग-
में उसे स्वीकार करना तो दूर रहा, उसे प्राप्त करने की उच्छा भी नहीं-
हो-सकती है दर्पण की, जगति जग में ही भोग दर्पण का वाप-
हो-सकती है भक्त भी इस प्रकार का भोगविनाशमय जीवन प्रिताने लगे थे।
कहे—जब फिर उनकी भक्ति समाप्त हो जायगी।”

अवकाश ही न रहे, युद्धों की विभीषिका भी सदा के लिए समाप्त हो
मे मभी लोग मन्त्रोपपूर्वक मुखमय जीवनयापन करने लग जायें। किन्तु
महापरिग्रही लोग अपनी इच्छा और मूर्च्छा के कारण मगार में
साम्राज्य होने दें तब न ?

मगार का कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जो छूट न सके। वे
न होने पर कई बार वे बन्नात् छूट जाते हैं। किन्तु यदि सासागि पदार्थों
स्वेच्छा से किया जायगा तो दुःख भी न होगा और समाज में उम
भी होगी। परलोक के लिए भी श्रयस्कर होगा। यदि व्यक्ति
पदार्थों को नहीं छोड़ेगा तो पदार्थ एक न एक दिन देर-मोरे
लेकिन उम दशा में हृदय को अत्यन्त दुःख होगा, प्रमत्तता न होगी। तब
भी नहीं होगी।

मुझे एक रोचक दृष्टान्त याद आ रहा है, जो इस सम्प्रदाय में
होगा—

एक जाट था। उसका प्रतिदिन किसी न किसी निमित्त को
पत्नी में झगडा हो जाता था। जब भी झगडा होता, जाटनी पत्नी
कहती—‘जगर उम तरह झगडा करोगे तो मैं जाती जाऊँगी।’ जाटनी
ने जाट नरा मरम जाता और मामने को ठडा कर देता था।

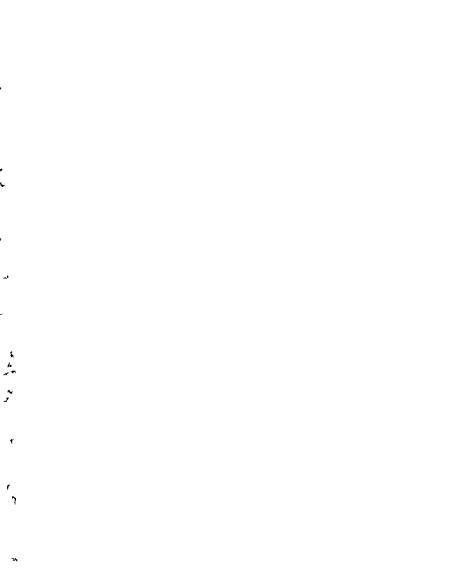
जाटनी की आए दिन कलह के समय बी जाती जाती इस बात
का उदाहरण है। सोचा—‘जगर रोच-रोच जाओ को कहती है।’

साधन समझेगा, साध्य नहीं। वह यही सोचेगा—“धन मेरे लिए व्यावहारिक का एक साधन है, मैं धन के लिए नहीं हूँ। फिर क्यों इसके अधीन बूँ? इसके लिए समय, शक्ति या जीवन बर्बाद क्यों करूँ?”

मज्जनो ! निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने का लाभ यही है कि आप स्वेच्छा से वस्तु को त्याग करे या परिमाण करे। व्रत के स्वीकार किये बिना निर्ग्रन्थ प्रवचन यत्किञ्चित भी भली भाँति पालन नहीं होता। तब तक जन्म-मरण के चक्र का कारण नहीं हो सकता।

उस व्रत को स्वीकार करने से पारलौकिक लाभ तो जन्म-मरण से मुक्ति और मुक्ति पाना है। जलौकिक लाभ भी कम नहीं है। सामान्य वस्तुओं के धारण करने से व्यक्ति मनुष्य के निर्भय, निश्चिन्त हो जाता है। वह राजभय रहता है, न चोरभय, न अग्नि या अन्य किसी प्रकार का भय। उसके प्रति भी मनुष्य के प्राणी निर्भय एवं आशस्त हो जाते हैं।

सांसारिक पदार्थों का स्वेच्छा से त्याग करने वाला व्यक्ति भी सांसारिक पदार्थों के स्वेच्छा से त्याग की एक मूर्तर परम्परा हो जाता है। उसमें भौतिक मरति में भी त्याग के सम्कार रूढ़ हो जायेंगे।



करना कि मैं अमुक वस्तु उतनी सस्या, मात्रा (तौल या नाप) या उतने मूल्य (इ-
मूल्य के अनुसार) में अधिक की अपनी मालिकी में नहीं रखूँगा, और न ही मैं
अधिक की उच्छा-मूच्छा करूँगा ।

उस प्रकार नी प्रकार के बाह्य परिग्रहों के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् मन्त्रों से
कि मैं अमुक पदार्थ उतने परिमाण से अधिक न तो अपने स्वामित्व में रखूँगा
ही उतने में अधिक की उच्छा-मूच्छा करूँगा । यही उच्छापरिमाणप्रत की विधि है ।

उस प्रत को तीन करण (करना, कराना और अनुमोदन) तथा तीन
(मन-वचन-काय) में मैं अपनी उच्छानुसार ग्रहण कर सकता हूँ । मात्रा ही मात्रा
काल-मात्र की मर्यादा भी व्रतधारी अपनी उच्छानुसार कर सकता है । फिर भी यदि
तो अपनी गृहस्थी में रहते हुए अपनी मन्त्रान को व्यापार-भरती में पशुत या
अथवा अन्य पदार्थों के कार्यों के लिए प्रेरणा देनी पड़ती है, कई बार उच्छा
मात्र विवश होकर मन्त्रान पड़ता है, अथवा माय में रहने के कारण मन्त्र
परिग्रह सम्बन्धी पवृत्ति को मन्त्रानुमति भी देनी पड़ती है, इसलिए ही मा
उच्छा तीन योग में परिग्रहपरिमाणप्रत स्वीकार करना चाहिए, अथवा मा
ही योग में स्वीकार करना चाहिए ।

+

6

+

+

6

6

+

+

6

तोड़कर दो धेतो को एक बना लेना योजना-मापेक्ष अतिचार है। इन्ही पक्षों के चाँदी का परिमाण अधिक हो जाने पर कुछ भाग दूसरो को रखने के लिए देना दान मापेक्ष अतिचार है। अथवा यह सोचकर कोई वस्तु अपनी मर्यादा में रखने के लिये कि इसे बाद में दान कर देंगे या दानशाला में दे देंगे, यह भी दान मापेक्ष अतिचार है।

अथवा अतिचार का एक रूप यह भी हो सकता है कि जो मर्यादा के उगका विस्मरण हो जाने पर या अनजान में उस मर्यादा में अधिक पदार्थों के हो जाने पर भी यही समझना कि जो पदार्थ मेरे अधिकार में है, वे मर्यादा में ही हैं। इस एक तरह से अतिचार है।

पाँच विधेय

आचार्य मम्मनभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकान्तर में इस परिग्रहपरिमाण के पाँच विधेय बताए हैं—

अतिवाहनातिमग्रह-विस्मय-तोमातिभारवहनानि ।

परिमित-परिग्रहस्य विक्षेपा पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

अर्थात्—अतिवाहन, अतिमग्रह, विस्मय, तोम और अतिभार ।

के लिए सबसे अच्छा रास्ता महाव्रत है, किन्तु है वह अत्यन्त कठोर, बड़ा है एव दुष्कर मार्ग। उस मार्ग पर चलने के लिए पूर्णत्याग अपना पना है। न व्यक्ति उस महामार्ग पर चल नहीं सकते। इसलिए भगवान् महावीर ने रास्ता बताया—आगारमार्ग—गृहस्थ श्रावक का मार्ग। उनके लिए उचित आसान रास्ता बताया है।

जो लोग पूर्णता के कठोर मार्ग को नहीं अपना सकते, जिनके पञ्चवर्ण व्रतों का क्षयोपशम नहीं हुआ, अथवा विषयोपभोग के सामने लज्जा कायंकरावों में जिनकी आभक्ति, समता पूरी तरह में हटी नहीं है, जिन्होंने नृप परम ध्येय की ओर बढ़ना चाहते हैं, उनके लिए शास्त्रकारों ने पञ्चव्रत विधान किया है, और उस आशिक त्याग मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दी है। निज-देवविरति (आशिक त्यागी) को भी उमी ध्येय को प्राप्त करने के लिए बढ़ने के लिए उन्हें अनेक अणुव्रतों का महाग पर्याप्त नहीं होता। गृहस्थों के अपने सामने अनेक अडचने आकर गड़ी हो जाती हैं कि सत्मा उन्हें मान्य पाना, अथवा गृहस्थ जीवन में कई पतोभन एव मोहाकर्षण आ जाते हैं। उक्त ध्येय की ओर बढ़ने ही नहीं देते। अणुव्रतों के अगीकार करने के लिए शक्ति-मति बड़ी ठीक हो जाती है, वहाँ से एक कदम भी आगे बढ़ नहीं पाते। शक्ति में परिपूर्ण होने, गृहस्थ श्रावक को उन कठिनाइयों से बचाने के लिए शक्ति-मति में शक्ति का मात्र करके आगे बढ़ने के लिए आवश्यक है।

मन की बात मन में ही रह गई। न धर्म-ध्यान कर सके, न प्रभुमजन ही कर सके।

यह है मर्यादाहीन, लोभग्रस्त जीवन की दशा।

दिशापरिमाणव्रत लोभवृत्ति और लोभवृत्ति के कारण (शारीरिक एवं मानसिक), असत्य, वेईमानी, चोरी, परिग्रहवृत्ति (किं विसृज्य धनं मे फले हुए थे, चाहे वे अणुव्रत के दायरे में ही थे, नहीं है। वह लोभ के बढ़ते हुए मागर तो एक मागर में सीमित कर देता है।) मवेज आचार्य हेमचन्द्र ने दिग्विजयव्रत की महिमा बताने हुए मनुष्य ने दिग्विजयव्रत अंगीकार कर लिया, उसने जगत् पर आत्म-अभिवृद्धि लोभरूपी ममूढ़ को आगे बढ़ने में रोक दिया। 'इमं या के के पञ्चान् मनुष्य लोभ के कारण दूर-दूर देशों में भवितव्य व्यापार जाने में रुक जाता है। फलतः लोभ पर अकुश लग जाता है।

मनुष्य दूर-दूर देश-विदेशों में मुख्यतः तीन कारणों से जाता है— (१) कारिग धन कमाने के लोभ में विदेशों में व्यापार सम्पन्न करने के लिए, (२) कामोद-पमोद करने, मँग-मपाटे के लिए, विभिन्न देशों के वपारियों से मिलने के लिए और (३) किसी आध्यात्मिक पुरुष की सेवा में पहुँचने के लिए। तीसरे कारण की दृष्टि में श्रावक के लिए देश-विदेश-पर्यटन उचित हो सकता है, परन्तु अर्थ और काम (लोभ और मम) के कारण देश-विदेश में पर्यटन या गमनागमन श्रावक के लिए उचित नहीं है।

अमुक दिशा में उस स्थान से इतनी दूर से अधिक न जाऊंगा। जैसे उदाहरण के लिये मर्यादा उस प्रकार की जा सकती है—'मैं अमुक केन्द्रस्थान (में वृत्त पर) से दक्षिण में अधिक दूर नहीं जाऊंगा। इसी तरह अधोदिशा की मर्यादा इस प्रकार की जा सकती है—'मैं अमुक केन्द्र स्थान से नीचे की ओर जल, स्थल, गन्ध, आदि में इतनी दूर से अधिक नीचा नहीं जाऊंगा। इसी प्रकार तिर्यग्दिशा हो मानव समय ऐसा मकल्प करना चाहिए कि मैं पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं में तिर्यग्दिशाओं में अमुक केन्द्र स्थान से इतनी दूर से अधिक नहीं जाऊंगा। इस प्रकार की विधि में गमनागमन के क्षेत्र को सीमित करने का प्रमाण दिशापरिमाणवत् कहलाता है।^१

दिशा परिमाणवत् स्वीकार करने वाला गमनागमन ही मर्यादा भी कर सकता है कि मैं अमुक दिशा में अमुक देश, प्रदेश, नगर, पर्वत, वन, टीला आदि में उगने नहीं जाऊंगा। अथवा इस तरह भी कर सकता है—'जैसे मैंने केन्द्र स्थान से अमुक दिशा में इतने दिन, मास, वर्ष आदि इतने समय में पैदल या अमुक सवारी में जितनी दूर जाया है, मैं उतनी दूर जाऊंगा। गमनागमन ही मर्यादा वह कोम, मीन, शिरोपी आदि जल में रहने वाले प्राणि के रूप में भी कर सकता है।

चना जाय, जहाँ उसकी दिशा की मर्यादा समाप्त हो जाती है। अब वह आभूषण ऐसी जगह पड़ा है, रखा है, जिसे व्रतधारी देग रहा है, कि वह वस्त्र या आभूषण को लाने के लिए नहीं जा सकता, क्योंकि उसने मर्त्य है कि मैं अमुक दिशा में उतनी दूर में आगे नहीं जाऊँगा। यह बात दूसरे वस्त्र या आभूषण जिस तरह में गया था, उम्मी नरह या किमी दूसरे तद्विधित क्षेत्र में वापिस आ जाय या कोई मनुष्य, देव या पशुपक्षी मरत क्षेत्र के अन्दर लाकर रख दे। ऐसी स्थिति हो तो उस वस्त्र या आभूषण दिग्गन्तवारी श्रावक ले सकता है। मगर उस मर्यादित क्षेत्र में बाहर पड़े जाने के लिए वह जा नहीं सकता, अगर जाता है, तो उसका व्रतभंग हो उस प्रकार वह किसी दूसरे को भी उक्त कार्य के लिए भेज नहीं सगा। व्रत दो वर्ण तीन योग में ग्रहण किया जाता है, प्रत्येक दिशा में गमन की है, उसने आगे स्वयं गमन न करना और दूसरे को भी मर्यादा देने भेजना—मन, वचन और काया में।

इस प्रकार जो प्राप्ताप्त करने में आगे जाती कठिनाइयाँ पड़ेंगी। मर्यादित करने मर्यादा का त्याग करना है, उसकी आत्मशक्ति और शक्ति का त्याग करना—कि ५०२

का स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक तृष्णा का धेय भी सीमित नहीं हो-
मीमित न होने से तृष्णा बढ़ती ही जाती है।

इसलिए पचम अणुव्रत में भी दिशापरिमाणव्रत के महत्त्व को बत-
ाया जाता है।

यों दिशापरिमाणव्रत पानों अणुव्रतों में एक विशेषता, एक तत्त्व है
वृद्धि की प्रगति पैदा कर देता है।

दिशापरिमाणव्रत के पांच अतिचार

इस व्रत के आराधन को पान अतिचारों में बनना चाहिए। पानों
में पान अतिचारों का स्वल्प बनाकर श्रावक को इनमें बनने नहीं दे-
ते। नास्तीय भाषा में ये पान अतिचार इस प्रकार

उपभोग, परिभोग-परिमाण : एक श्रृङ्खला

✽

मनुष्य जीवन केवल मग्न या उपभोग के लिए ही नहीं है। यदि
मात्र त्याग भी अनिवार्य है। मनुष्य निवेकशील और सामाजिक प्राणी है।
उसे अपने परिवार और समाज में दूसरों के लिए त्याग भी करना पड़ता है।
त्याग में उसे कोई कष्ट नहीं होता वह सहज स्वाभाविक रूप में ऐसा
करी देता यदि वह अपने जीवन में स्वार्थी न बन कर अपने परिवार और
समाज के अधिकारिक व्यक्त मान कर ले और उनके लिए त्याग करने
पर निर्भीक और निरालं वस्तुओं का ही उपयोग करे तो उसका जीवन भी
सफल है और उनके साथ-साथ भोक्त लोगो का जीवन भी मान्य है।

परिभोग्य पदार्थों का परिमाण आ जाता है, जो जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक के लिए आवश्यक है।

इनमें से 'आभरणविधि' आदि कुछ बोल आपको ऐसे प्रतीत होंगे कि समय में आवश्यकता में अधिक पदार्थों की मर्यादा में सम्मिलित है। विधान निकालदर्शी सर्वज्ञों द्वारा सामान्य-विशेष राजा-महाराज या गुरु-नेकर जौपट्टी में रहने वाले गरीब श्रमजीवी या कृषक तत् को नष्ट मर गया है। ये बोल तो सर्व-साधारण रूप (Common) में मरते हैं। उनमें से अपनी-जपनी शक्ति, परिस्थिति, योग्यता आदि देना पड़ता है। परिभोग्य पदार्थों का त्याग या मर्यादा कर लेनी चाहिए।

शास्त्र में २६ बातों की सूची तो इसलिये बताई है कि मर्यादा के बिना राजा-महाराजा तक उस व्रत को आसानी से धारण कर सके। श्रावक तो अपनी ओर से सभी बातों का मर्यादा कर दिया है, जिस कारण उनकी आवश्यकता न हो, वह उसका सर्वथा त्याग कर सकता है।

मर्यादा की मर्यादा

है । कई अन्न या ग्राह्य वस्तुएँ अधपकी या अधिक पकी हुई हानिकारक होती हैं । अनिष्ट में समझना चाहिए ।

अनुपसेव्य—जिम वस्तु का सेवन शिष्ट सम्मत नहीं है, पूज्य है । सेव्य है । पूर्वज ऋषियो ने जिनका उपभोग वर्जनीय माना हो, वे भी । जेमे अनजाने फल, अण्डा, माँस आदि पदार्थ ।

अम्बादवृत्ति एव आहारशुद्धि भी

गृहस्थ माधक को भी अपनी जीवन उत्तरोत्तर मोक्ष मार्ग के लिए । तब यह आवश्यक है कि वह अपने आहार-विहार में अम्बादवृत्ति का । ना ही आहारशुद्धि भी रहे । उन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति मार्ग पर । गृहस्थ हो या माध, दोनों को आहार लेना आवश्यक होता है । परन्तु । तब से पहले उसकी शुद्धता की ओर अधिक ध्यान दे । अन्यथा । गया है—

चूँकि अस्वादवृत्ति सप्तमव्रत लेते ही या संकल्प करने ही होगी, उसके लिए निष्ठापूर्वक सतत प्रयत्न करना पड़ता है। उसके लिए उम अस्वादवृत्ति का पालन मन-वचन-काया में मृत्युप्राप्ति शरीर और आत्मा को पृथक्-पृथक् समझने पर ही अस्वादवृत्ति हो सकती है। किन्तु स्वादलोलुप लोग देह के माय आत्मा को—उमें अपवित्र कर देते हैं। अतः स्वादवृत्ति में मुक्त होने का उपाय वैराग्य—प्रमद वैराग्य, परन्तु परमात्ममन्त्रि के माय ही वैराग्य है, यह मार्ग अभ्यास सप्तमव्रत के साथ मार्ग को करना है।

सप्तमव्रत के पाँच अनिचार भोजन दृष्टि से

सप्तमव्रत के पूर्वोक्त २६ यौगों की मर्यादा, उसी पान-पचकारण कमीटी तथा अस्वादवृत्ति और अनामन्त्रि के पक्ष में ही मायधानीपूर्वक मर्यादा की लीक पर चलना चाहिए। यदि पान-आमन्त्रि और उच्छृङ्खलता को प्रथम दिया कि मर्यादा मग हो सके। महावीर ने उमीचाए श्रावक को मातने पान के ५ अतिशयो (श्री) या निर्दोष चिन्ता है, अन्यथा व्रत में मगिनता आ सकती है। श्रावक रहने के लिए भोजन सम्बन्धी इन पान अतिशयो को जानना आवश्यक है — (१) सचित्ताहार, (२) मन्त्रितपट्टिबद्धाहार, (३) अणोपि पान (४) कपोतिभोजनी भक्षणया (५) तन्त्रोसति भक्षणया ।

सस्पृष्ट न हो । वाहन में बैठ कर, जूते पहने हुए बैठ कर बैठे आहार करना भी भारतीय सस्कृति की दृष्टि से दोगुना है ।

आचार्य समन्तभद्र ने इसमें सशोधन करते उसमें समस्त व्रत सस्पर्शी ५ अतिचार इस प्रकार दिये हैं—

“विषयरूपी विष के प्रति आदर रखना, बार-बार करना, पदार्थों के प्रति अत्यधिक लोलुपता रखना, भविष्य के रखना, भोगों में अत्यधिक तल्लीन होना ।”

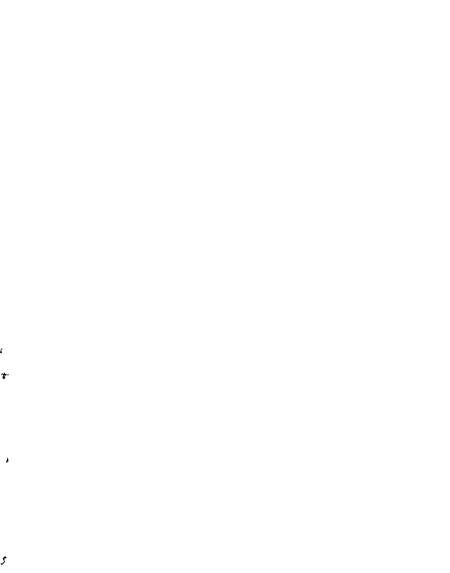
मचमुच ये पाँच अतिचार श्रावक को मर्यादावादी जन के प्रति भी आगक्ति, पुनः-पुनः स्मरण, अत्यधिक लोलुपता तथा भोगों में अधिक तल्लीनता में डालते हैं । रात-दिन भोगों में रहने वाला श्रावक बाह्यरूप में व्रत ग्रहण कर लेने पर भी श्रावक दम्भी, धर्मध्वजी और लोंगो में अविश्वमनीय हो जाता ।

देश है। उन्हे महान् बनाने का श्रेय वहा के महान् पुरुषों को है, जो स्वयं
और मयम में जीवन व्यतीत करते हैं।”

उमन्निग नि मन्वेह यह कहा जा सकता है कि श्रावक को मानव-
बुद्धि जानें पर भी अपनी आवश्यकताएँ न बढ़ाकर अपना रहन-सहन
पूर्ववत् मादा और माधारण कम गर्चीला रहना चाहिए।

तीसरी आवश्यकताएँ हैं—व्यसनमूलक, प्रदर्शनपूर्ण तथा वास्तविक
य तीसरे स्तर की आवश्यकताएँ न तो मनुष्य-जीवन के लिए जरूरी हैं, न
वास्तविक वे नानिवारक, और मानव जीवन की भयानक शक्तों को नष्ट
तो ही नाट्य रूप देना, नरम स्वास्थ्य एवं शक्ति को भी हराकर नष्ट
आवश्यकता से ही कोटि से —

और वैध है। लेकिन जब तक वह घर-गृहस्त्री में है, अपने परिवार से तब इस-जायदाद आदि में सम्बन्ध रखा है, तब तक अत्यन्त वृद्धत्व, अगति, अज्ञान, अगति-कलना आदि विविष्ट ग्राह अनिवार्य कारणों के बिना न्यायोचित नहीं है। वस्तुतः कर्म मिथ्या पर या दूसरे पर आश्रित रहना कथमपि उचित नहीं है। वस्तुतः अर्थ-मकटापन्न समय में तो श्रावक का पराश्रित होकर जीना कथमपि उचित है। आश्रित दृष्टि में मनुष्य दूसरे के अधीन (गुलाम) बने, यह न तो श्रावक जीव न ही भगवान् के उपदेशों का ऐसा आशय ही है। जबकि श्रावक के समान ही पाँचों इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि आदि साधन-सामग्री मिली है, धर्मनाश मिती है, उनके पीछे यही उद्देश्य प्रतीत होता है कि मनुष्य और आत्मतत्त्वाण में परस्पर वृत्ति आत्मनिर्भर बने।



किं गृहस्थ श्रावक भीम माग कर, पराश्रित रहकर अपना जीवनयापन
 क्षपितु जिन व्यवसाय में महापाप नहीं है। उन मारिकक भन्ने को करके
 आजीविका धर्मपूर्वक चलाएगा। साथ ही श्रावक के लिए जब वह बनाएगा
 वह धर्मपूर्वक आजीविका करते हुए जीवनयापन करता है, तब अपने पुत्रों
 एवं अन्तारम्भ-अन्तर्गृह मुक्त धर्ममय व्यवसाय को भी वह वेदमानी, ठीक
 याजी, दोष या अनैतिक दृग में नहीं करेगा।

यह बात निश्चित है कि उपभोग-परिमोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के
 उन्ने मोट न कोई धर्मप्रधान आजीविका करनी पड़ेगी। परन्तु आजीविका धर्मपूर्वक
 नहीं रह सकती है, जो अल्प आय में वह मनुष्य हो जाय। और अल्प आय में
 पावक मनुष्य रह सकता है, जिसकी मृतमृत आवश्यकताओं भी रूप में
 निम्न श्रावक के लिये धर्म-नौते और अफताबन होंगे, उन्ने आती थाप दफते
 अनैतिक तरीके व्यवसाय में पाप अपनाते पड़ेगे, अन्यथा उन का काम
 की पूर्ति नहीं होगी। जो बड़ी हुई आवश्यकताओं की दृष्टि में श्रावक को
 उन्ने हनु मन्तारम्भ-मन्तारम्भ मुक्त आजीविका करेगा या अन्य अनैतिक
 व्यवसाय में वह धर्मपूर्वक आजीविका करने वाला नहीं रह सकेगा।
 जो कि निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, उन्ने उनकी पूर्ति के लिए
 निम्नलिखित व्यवसाय भी पापपूर्ण तरीके से करनी भी माग
 व्यवसाय में श्रावक पाप की मन्तारम्भ आवश्यकताओं तथा भीमा
 व्यवसाय में श्रावक पाप की मन्तारम्भ आवश्यकताओं तथा भीमा

पन्द्रह प्रकार के निपिद्ध व्यवसाय

उसी दृष्टिकोण से शास्त्रकारों ने श्रावक के लिए मानवें प्रत में इन व्यवसायों को जानकर उनका सर्वथा (तीन करण तीन योग में), त्याग करने का विधान किया है। ये निपिद्ध व्यवसाय 'कर्मदान' कहलाते हैं, और उनमें शामिल हैं। उन्हें मानवें प्रत के कर्म (आजीविका) विभाग सम्बन्धी १५ अर्थात् १५ हैं। श्रावक को अपनी आजीविका का चुनाव करते समय इन १५ व्यवसायों में सर्वथा सम्मति कर उन कर्मदान (महापाप कर्म के मूल में १५ व्यवसायों में सर्वथा हर व्यवसाय —

देकर लेकर उस गनिज या पर्वतीय पदार्थ से वेचना और अपनी जमीन को भी स्फोटकर्म है ।

शाम्भकार के तात्पर्य में अनभिज्ञ कई लोग कृषिकर्म को भी स्फोटकर्म मानते हैं, परन्तु कृषि में जमीन फोटी नहीं जाती है, मोटी जाती है, फुटेरी नहीं होती, उसमें धमाका (स्फोट) नहीं होता है, न उनमें पनेन्द्रिय जीवों का मृत्यु होता है, न जल आग है, इसलिए कृषिकर्म स्फोटकर्म नहीं है । अगर कृषिकर्म स्फोटकर्म मानें, तो तीनवर्ग तीन योग में निषिद्ध है ।

कमाई अत्यन्त पापपूर्ण है, निन्द्य है। कई बार ऐसी कुलटाओं के गर्म रस्सों से वे गर्म गिराकर भ्रूणहत्या कर देती हैं। इसलिए यह सर्वथा त्याज्य है।

उस प्रकार ये कर्मादान रूप पन्द्रह व्यवसाय श्रावक के लिए मन-वचन-कृत-कारि-अनुमोदित रूप से सर्वथा त्याज्य है।

जगत में उन १५ प्रकार के व्यवसायों के अनिरिक्त भी कई व्यवसाय जिनमें महापापकर्म होता है, ये १५ कर्मादान तो उदाहरण के तौर पर हैं— गार्डगाना, गिकारगाना, शूतरीडा केन्द्र, चौर्यकर्म, तम्बाकूकर्म, दम्पत्य विरग्यकेन्द्र, मदिरालय, वेद्यालय आदि तो यहाँ कर्मशिरारूप अनिवार्य बताना कि श्रावक जब से सम्पत्तवी या मार्गानुमारी बनना है, तभी से गाना (जूग, चोरी, मायाहार, गिहारा, मद्य, वेद्यागमन, परस्त्रीगमन) मन-वचन-कृत से सर्वथा त्याग करता है, इसलिए उन व्यवसायों का करने का श्रावक के लिए प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न उठता है—जो व्यवसायों का त्याग नहीं है, श्रावक कदाचित् उन बातों में रूपांतरित हो जाय कि जिस तरह वे वातावरण में नहीं कर रहा है, दूसरे में जाकर वह वातावरण में वातावरण मान लेकर चल रहा है या वातावरण में

की लात सहन कर लेता है, किन्तु अगर कोई दूध न देने वाली गाय मारे तो वह असह्य होती है, उसी प्रकार अशुभाश्रवजनित दण्डन से शास्त्राज्य होती है, लेकिन गृहस्थ श्रावक को अपना गृहकार्य चलाने का काम करने के लिए कुछ प्रवृत्तियाँ करनी पड़ती हैं। जब दण्डरूप प्रवृत्ति पड़नी है तो वह ऐसी ही प्रवृत्ति करे जिसमें कुछ प्रयोजन तो मिले। प्रवृत्तियों में कुछ प्रयोजन सिद्ध होता हो, उनका दण्ड फिर भी भाव्य माना जाता है, वह दण्ड मार्ग्य है, लेकिन जिन प्रवृत्तियों में श्रावक को कोई प्रयोजन मिले, जिनमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, उनका दण्ड निरर्थक-निर्विरोध नहीं करना चाहिए।

श्रावक ने पान आश्रयों से जनित दण्डरूप प्रवृत्तियाँ प्राप्त कर ली हैं, वह तभी तो बंद कर दी हैं, उसके बाद दमो दिसाओ में समाप्त कर दी हैं। पानों आश्रयों की प्रवृत्तियाँ धर्म से भीमित कर दी हैं। अमुक धर्म मार्गस्थ धर्म में ही रहीं। फिर गातने ब्रा के द्वारा उपभोग प्रवृत्तियों, उदयोग-प्रवृत्तियों की तथा व्यसनाय की मार्गस्थ करके ब्रह्म-धर्म प्रवृत्तियाँ किन्तु फिर भी ताया से सम्मानित कुछ प्रवृत्तियाँ तथा मन-वश भी मार्गस्थ प्रवृत्तियाँ अभी शेष रहीं। अब देगना यह है कि उन मार्गस्थ प्रवृत्तियों में से कौन-कौन से प्रवृत्तियाँ श्रावक को करना चाहिए ?

अनिष्ट है, प्रतिकूल है तो उसको हटाने की कल्पना में चित्त को बाध-बाध करे तो यह मन का अमयम है, जो समत्व को नष्ट करने वाला है।

समत्व का आराधक पांचों इन्द्रियो तथा मन के अनुकूल-प्रतिकूल अमनोज वस्तु या व्यक्ति के प्रस्तुत होने पर अमयम में रमण न करे बल्कि होकर मयम में या आत्मस्वभाव में अन्तर्मुखी होकर रमण करता है।

सामायिक की साधना के दौरान ही नहीं, बाहर भी श्रावक को ध्यान पर मयम रगने का अभ्यास करना चाहिए। श्रावक को यह भी-भी चाहिए कि पाँचों इन्द्रियो पर अमयम का परिणाम भयकर होता है।

पतंगा अजानी है, वह प्रकाश के रूप पर मुग़ा एवं आम को गिरा दे देता है, वही जल का मयम हो जाता है। दीपक के रूप पर मुग़ा को पीना न मोचने वाला पतंगा आगिर पाता क्या है? गुन भी जल पर दीपक को भी बुझा देता है। कटि की नोक में लगे हुए जगन्नाथ की मन्त्री मयम नहीं कर पानी, और अपने प्राणी में हाथ धाँकते हैं। मयम कर्म की पशुरियो में बन्द होकर हाथी का कर्ता बन जाते हैं। बिचरे हल-घोड़े-मे शानो की उगेना यदि भीती निर्दिष्ट कर माँगी शानि कर मन्ने की आपत्ति में वह बन सकता भी।

गमभावी साधक किसी भी क्षेत्र विशेष को पाकर घबराता नहीं, क्योंकि वह स्वर्ग की गृष्टि कर लेता है, क्षुद्र प्रकृति के लोगों के बीच रहते हुए भी समता नहीं खोता, अगर उसे ऐसे क्षेत्र में रहने का काम पड़ता है, जहाँ

— यदि कोई मेरे विषय में शुभ या अशुभ नाम या शब्दों का प्रयोग उममें मोहवश रति या द्वेषवश अरति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लक्षण या स्वरूप नहीं है ।—(नामगामायिक)

यदिदं स्मरयत्यर्त्ता न तदप्यस्मि किं पुन ।

उद तदस्या मुस्येति भीर मुस्येति वा न म ॥२२॥

—यह जो गामने चानी मूर्ति (प्रतिमा) अहंतादि स्था का स्मरण में उम मूर्तिरूप नहीं है, क्योंकि मेरा माम्यानुभवा न तो मूर्ति के और न उमके विपरीत है । (स्थापनागामायिक)

गाम्यागमज—तदेही तद्विपक्षी च गाऽपी ।

ताऽपी स्ता परद्रव्ये को मे साद्रग्यारूपः ॥२३॥

— गामायिकगामा जाता अनुपयुक्त आत्मा और उमका मूर्ति तथा (गामम—नो आगम—भाति नोआगम—तद्रूपतिरिक्त आति) के रूप शुभ या अशुभ है, "हे, मुझे कैसे पता ? क्योंकि । परन्तु मुझे साद्रग्य का तरंग कैसे अभिव्यक्त हो सकता है ? (स्थापनागामायिक)

राजसतीति नो पीये, नारण्यातीति पीया ।

सा हि रम्योरम्ये वा नात्मागामस्य कोऽपि म ॥२४॥

— राजसतीति नो पीये, नारण्यातीति पीया । (राजसतीति नो पीये, नारण्यातीति पीया ।) (राजसतीति नो पीये, नारण्यातीति पीया ।)

सामायिकव्रत : विधि, शुद्धि और सावधानी

[illegible][illegible]

" I have been thinking much lately about the future of our country, and how we can best prepare ourselves for the challenges ahead. It seems to me that the most important thing we can do is to strengthen our education system, so that every child has access to quality learning opportunities. We must also work to ensure that our economy remains strong and resilient, even in times of uncertainty. And finally, we must strive to build a more inclusive society, where everyone has a voice and a chance to succeed. These are the goals that I believe will lead us to a bright and prosperous future."

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1

साधक जब-तब हिंसा, झूठ, चोरी आदि करने वाले या हिंसा, चोरी, झूठ आदि की घटनाओं के लिए प्रशंगात्मक उद्गार निकालेगा—“बहुत बड़ा वाह-वाह बहुत मजेदार घटना घटी।” अथवा उन कार्यों का समर्थन करेगा कि वे ठीक होना तो अच्छा ही है। अथवा मन से ऐसे कार्यों को अच्छा मानेगा कि मन प्रसन्न होगा। किसी को लुटते-पिटते देखाकर कहेगा—“अच्छा हुआ उसका मान ले गए तो।” ऐसी दशा में सामायिक का महत्त्व क्या रहा? ऐसी मनोभावना काव्य कार्यों के अनुमोदन से मुक्त होगी, एक प्रकार का रीतिरिवाज का कायापालन जाएगी।

इसके समाधान में शास्त्रीय दृष्टि यह है कि सामायिक में अनुमोदन नहीं रहता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सामायिक की मान्यता में सामायिक प्रवृत्तियों का समर्थन, अनुमोदन या प्रशंसा करे। न कि सामायिक किसी प्रकार की पापयुक्त प्रवृत्ति, घटना या पापकर्मपरायण व्यक्ति का अनुमोदन का प्रतिनिधि भाव भी मन में नहीं रहना चाहिए। सामायिक में तो किसी भी प्रकार की साव्य प्रवृत्ति न तो स्वयं उत्पत्ती है, न उत्पत्ति है और न ही करने वालों का या नैसी साव्य घटना का अनुमोदन-प्रशंसा। सामायिक तो आत्म-विकास की अत्यात्म शक्ति के मार्गदर्शक है, जो नैतिक कर्म और साधनगुणों की वृद्धि करने की सामान्य है, उसमें तो उसे सामायिक या मोक्षमार्ग के लिए सामायिक को दुष्ट या हानि पहुँचाया जाया नहीं। सामायिक के लिए सामायिक-कार्य-अनुमोदन रूप में व्यापक करना है। सामायिक के लिए सामायिक अनुमोदन रूप में व्यापक करना है, उसके पीछे यही भाव है कि सामायिक के लिए सामायिक प्रवृत्तियों का पूर्ण रूप से त्याग देना है। सामायिक के लिए सामायिक प्रवृत्तियों का पूर्ण रूप से त्याग देना है। सामायिक के लिए सामायिक प्रवृत्तियों का पूर्ण रूप से त्याग देना है।

होता है, तब सामायिक जैसी महत्वपूर्ण भावना के लिए समय निर्दिष्ट हो नहीं सकता। आचक को उतना अभ्यस्त हो जाना चाहिए कि वह अन्य कार्यों को छोड़कर सामायिक जैसी आवश्यक धर्मनियमा करे। किन्तु सामायिक के समय के सम्बन्ध में बहुत अनियमितता चलती है। कभी सुबह के समय को आसन लगा कर सामायिक में जम गए, कभी शाम के समय में ग्रहण करनी। समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं।

सामायिक के लिए सबसे अच्छा समय प्रभातकाल ही हो सकता है। उस समय प्रकृति बड़ी ही रमणीय, ज्ञान और मधुर होती है, मन अधिक मधी, ऐसे समय में, जबकि प्रायः लोग दैनिक कर्म में पवृत्त रहते हैं, साधक का मन समस्त एवं धर्मजागरण के विचारों में तन्मय हो जाता है। प्रभात का समय जब, ध्यान एवं आत्मनिर्भर के लिए भी उपयुक्त माना जाता है। स्वर्णिम प्रभातकाल ज्ञान और प्रगल्भता का प्रसारण का साधन है। स्वर्णिम प्रभातकाल में परिपूर्ण रहता है। अतः सामायिक के लिए प्रभातकाल बहुत ही उपयुक्त है। अगर प्रभातकाल में न जा सके तो दोपहर का समय भी कई अवस्था में दूसरे समयों के रजामे ज्ञान समया सम है। सामायिक-साधना की जा सकती है। साधक अमृतानन्द में उपविष्ट होता है।

दूसरा पक्ष है- सामायिक काल समय तक करनी चाहिए।

50

1000

1
2
3
4
5

2

4

1

112

1

2

5

45

2

यहाँ गए ह ।' मेठ ने जब सुना तो मन ही मन क्रुद्ध हो उठा । उसीही मामाधिक ने
हुई, त्यों ही मेठ ने पुत्रवधू को आड़े हाथों लिया तो उसने सविनय कहा—
आपका मन तो मोचीबाजार में घूम रहा था, मामाधिक में न था ।
आमन्त्रिक को मन्त्र-मन्त्र कह दिया था ।" पुत्रवधू का उत्तर सुनकर श्रावक ने
मूल स्वीकार कर ली । भविष्य में सावधान रहने का वचन दिया । दूसरे दिन
वही माई मेठजी को पूछने आया तो पुत्रवधू ने कहा—"अभी वे मामाधिक में
मन्त्रमुक्ता श्रावक का मन मामाधिक में था ।

उस प्रकार मामाधिक में मन की एकाग्रता को भगवन्ने वचन
वचना चाहिए ।

चक्रादुष्प्रणिधान का अर्थ है—मामाधिक के दोषान्तर, अर्थात्
अमन्य अदम्य दोषान्तर ।

कायादुष्प्रणिधान का मन्त्रवच है—मामाधिक में काया को बाधना
मानस प्रवृत्ति, काया में कुपेष्टा करना, अकारण शरीर को मित्र-प्राप्त करना ।

मामाधिकमन्त्रिण का अर्थ है—मामाधिक ग्रहण की है मन्त्रिण ।
होना या मामाधिक करना ही भूत जाना ।

और पाँचवाँ अर्थ है—मामाधिकानाम्बिधि । मामाधिक को
मन्त्रिण के अर्थ में प्रयोग करना, मामाधिक का समय पूरा होना मन्त्रिण ।

मामाधिकमन्त्रिण का अर्थ है—मामाधिक ग्रहण की है मन्त्रिण ।
होना या मामाधिक करना ही भूत जाना ।

मामाधिकमन्त्रिण का अर्थ है—मामाधिक ग्रहण की है मन्त्रिण ।
होना या मामाधिक करना ही भूत जाना ।

मामाधिकमन्त्रिण का अर्थ है—मामाधिक ग्रहण की है मन्त्रिण ।
होना या मामाधिक करना ही भूत जाना ।



1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

1/2

मे खटारविषयक जो मर्यादा रखी गई है, उसे भी घटाना, पहने, दूसरे और अणुव्रत में रखी हुई मूढम हिंसा, मूढम अमत्य, मूढम चोरी की दृष्टि का भी दिन-रात के लिए सर्वथा त्याग करना, तथा पाँचवें और मातवे व्रत में रखी मर्यादा को और घटाना । इस प्रकार व्रतग्रहण के समय जो-जो मर्यादा रखी है, उस मर्यादा को एक दिन-रात के लिए न्यूनतम कर डालना ही श्रावक व्रत है ।

विशेषी श्रावक प्रतिदिन उस बात का मनोरथ करे कि 'मेरी आत्मा में नैतिक पैदा हो जाय कि मैं आरम्भ-परिग्रह का सर्वथा त्याग कर दूँ, निर्बल बनूँ । परन्तु जब तक उनकी शक्ति प्रगट न हो, तब तक काम में कम एकाग्रता । लिए न्यूनतम श्राव्यकताओं से अपना काम चला कर आत्मनिर्वाणता की राह में अधिक समय दूँ । मूढमत्वाश्रम में रहता हुआ भी त्याग मर्यादा का अनुमान के अनुसार श्रावक न ब्राह्मण के समय जो मर्यादा (श्रावक) उन्हे मिलाना करना (प्राप्तता) है ।

१४ नियमों के अनुसार निवृत्त करके जा मर्यादा रहता है, जो श्रावक बना रहता है, वह महज ही आत्मशक्ति रूप मर्यादा का अनुमान है ।

म. स. स. न. शेष नियमों के निवृत्त का काम इस प्रकार बताया है

सर्वज्ञ-वचन नियमों पत्नी-ताम्रुत यत्प कुमुदेषु ।

प्राप्त्यन मरण नियम-सम्भ विधि-निराकरण भवते ॥

2

1/2

3

1/2

1

2

1

2

1/2

1

2

1

2

1

2

1

ही भगवान् महावीर ने गृहस्थ श्रावक के आध्यात्मिक विकास के लिए सामग्री का देशावकाशिक की तरह पौषधोपवासव्रत का विधान किया। वृत्ति पौषधोपवास के माधना में धार्मिक प्रपञ्च में बिल्कुल निश्चिन्त, आजीविका के शेष में भी विचार होकर एकमात्र आत्मा की उपामना में ही गृहस्थ साधक एक रात-दिन बिताता है। उसलिए उसका आध्यात्मिक उत्कर्ष में मोघा सम्भव है। इस साधना से गृहस्थ साधक के अन्तःप्रदेह का ऐसा शोधन, परिष्कार एवं अभिवर्धन होता है, जिससे पञ्चात्म सर्वतोमुखी आत्मिक उन्नति का द्वार खुल जाता है, जो बिघ्नवागण आत्मिक विकास का मार्ग रोके नहीं रहती है, उन्हें स्वयं साधक उस व्रत में पुरुषार्थ में आनन्द का कर फटा सकता है।

मनुष्य, विशेषतः सम्यग्दर्शनसम्पन्न प्रवर्तारी श्रावक तीतराम परमात्मा का उद्घुष्ट है। वह अपने अन्तर अन्तःशक्तियों की योग्यता को दिशा देता है। वह मित आध्यात्मिक सम्पदाओं उभरे हुए है। उसका दीन-हीन और विरक्त आत्मविस्मरण करना उचित नहीं है। पौषधोपवास में अपने वाग्विचार आत्मविचारों में मात्र अपने आपको तीतराम परमात्मा का उत्तराधिकारी समझना पड़ेगा।

मके । उस प्रकार आत्मनिरीक्षण करते समय अपने दोषों, भ्रष्टियों, बुद्धियों, बुद्धिगतियों या अपराधों को ढूँढ़ने में उनका उत्साह नहीं होता, न ही उन्हें वे स्वीकार मूल्यती है और न ही वे उन्हें छोड़ने को उत्साहित होते हैं । जैसे अपनी बात में हुआ काजल स्वयं को नहीं दिखाई देता, वैसे अपनी बुराइयों में उन दुर्गमियों को नहीं मूल्यती । अधिकांश मनुष्यों की मानसिक रचना ही ऐसी होती है कि वे बात में अपने आपको निर्दोष मानते हैं । उन्हें कोई दूसरा व्यक्ति उनकी कमियों में भी उनका मन उसे स्वीकार करने को प्रायः तैयार नहीं होता । प्रायः हम ही दूसरे के दोष ढूँढ़ने में बड़ा चतुर और सूक्ष्मदर्शी होता है । उसकी तैयारी रचना यन्त्रि देवते ही बनती है । पर जब अपना नम्र आता है तो वह सभी नममन आलोचना यन्त्रि न जाने कहाँ छुमतर हो जाती है । जैसे गोटा व्यापार और बेचने के बाँट तीन में बड़े-पटे बना कर अलग-अलग रखा है, और नमय बड़े बाँटो को तथा बेचने के समय छोटे बाँटो को काम में लाता है, वैसे दूसरे की बुराइयों ढूँढ़ने में हमारी दृष्टि अलग तरीके में और अपनी बात और तरीके में काम करती है । यदि थाक अपने पर पर ध्याना देकर पीछे देखने की बुराइयों गोजी के पजाय अपनी बुराइयों से तो तय जाये । यदि चिन्ता करने की तरह यदि अपने गुणों की चिन्ता करना लगे, तो यह भी होता है । भाव के महाराष्ट्र सम्पत्तिगिहजी के चाचा यामी भी तो है, यानी भाव में एक भजा में साधक को बहुत ही अनुत्त परामर्श देता है ।

करना चाहिए शास्त्र में 'अप्पसम मन्निज्ज छप्पिकाए' (अपनी आत्मा के समान ही काया—समस्त प्राणीमात्र को माने) का रहस्य भी यही है।

बुढ़ापे में धर्माचरण की बात अनिश्चित

यही वान भगवान महावीर कहते हैं कि श्रावक को पर्वतश्रियों में मगधपट एव जरीर मग्घन्धी भोगोपभोगो में त्रिलकुल निवृत्त होकर शेष जीवन दिन-रात भर पीपधोषवाम करते अपनी आत्ममाधना में अतिरिक्त ध्यान चाहिए, आत्ममाधना-आत्मालोचना का अभ्यास अभी में करना चाहिए, बुढ़ापा आकर तेर त्रिगा, इन्द्रियां क्षीण हो जाएंगी, अनेक व्याधियां आ जाएंगी दुनियादारी एव दूसरों की पनायत छोड़कर आत्मार्थ की आराधना करना शुरू परन्तु तब कुछ नहीं हो सकेगा। दशरूपार्थिक मूल में भगवान महावीर का उपदेश निम्न है—

'जरा जाय न पोडेइ, वाही जाय न वड्डइ।

जार्थिविया न हायति, ताव धम्म समाये ॥'

—'जब तक बुढ़ापा आकर पीड़ित नहीं करता जब तक जोर्तारिणी नहीं आती तब तक दुष्टांगी इन्द्रियां क्षीण नहीं होती, तब तक तुम्हें समझना पड़ेगा कि जार्थिविया न हायति।'

6

श्रावक का मूर्तिमान औदार्य :
अतिथिसंविभावृत

[illegible][illegible][illegible]

वैभव का नाम मिले, वह तो सभी को अपना समझता है। मोहाश अमुक मर्मा के लिए ही अपना पसीना बहाने और दिन-रात कमाते रहने की मत्ति में संसार जम्हरनमद की, प्रत्येक पिछड़े व्यक्ति की सेवा-महायता करने में तत्पर हो रहा है।

जो मद्गृहस्थ अपने अन्तःकरण में परमार्थ बुद्धि का विकास कर परिश्रम और उदार दृष्टिकोण से जीवन की मार्शकता पर विचार करने के बाद आत्मा में परमार्थ को सक्रिय करने की भावना में प्रेरित होकर आचार्य का मार्ग अनुसरण करते हैं। उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ सहजस्य से परमार्थ बुद्धि की मार्गिणी बन जाती हैं।

तीर्थंकर भगवान् जब आचार्य-मार्ग की परिग्रहता पर पहुँचते हैं, तो आचार्य-मार्ग दृष्टि में पूर्ण आचार्यत्वका की राह— मुनिजीभा के रूप में आगे है। तब उनका पूर्ण मार्ग मत्तिनी तक समाप्त होकर और मुक्त मन का भाव है। १। २। ३। परमार्थ प्रत्यक्षता का विचार है।

यह है अनिशिमविभागत्रय के माध्यम से उत्कृष्ट सुपात्र को दान के दान दितानि की मायना करने का मुफल ।

उत्कृष्ट सुपात्र न मिलने पर मध्यम व जघन्य सुपात्र को भी

परन्तु एक प्रश्न है कि ऐसे उत्कृष्ट सुपात्र गयभी मुनि का योग्य तो नहीं मिलना पड़ता है, क्योंकि माधु-माध्वी तो किसी एक गाँव में बिना किसी चानुर्गम के चार मास निवास, जैसा कि २६ दिन में अति गरीबी में भारतवर्ष में अनेक ऐसे क्षेत्र भी हैं, जहाँ माधु-माध्वी का निवास नहीं होता । ऐसी दशा में उस अनिशिमविभागत्रय का अभ्यास किस प्रकार हो सकता है ? उस शका के समाधान हेतु आचार्यों ने बताया कि उत्कृष्ट सुपात्र न मिलने पर मध्यम या जघन्य सुपात्र को भी सुपात्रों का दान देना चाहिए ।

माय परबोध में आने वाली नहीं है तथा परिवार में मेरे पुत्र कमाने लाया है। मैं
हूँ, तब भी उम्र सम्पत्ति के प्रति समस्त रगकर वह सारी की सारी सम्पत्ति अपने मि-
त्र या अपने परिवार के लिए सन्निहित करके न रखे, अपितु परिवार निर्वाह के लिए अल्प
हिस्सा रगकर बाकी की समस्त सम्पत्ति का यथायोग्य हिस्से करके उचित मानवीय
सर्वहितकारी कार्यों में लगा दे।

अमेरिका के जनशुभेकर कार्नेगी ने सन्निहित धन को अपने पीछे छोड़ जाते व
अदम्य बाने हुए कहा है—“कोई आदमी धन कमा कर मर जाय तो उसका धन
ने निकल लूने और धन को छोड़ जाय—इसमें बड़ा गुनाह और काई नहीं। मैं यह
साधन करता हूँ कि अपनी जिन्दगी में जी में अपने माते धन हो परोपकार
में लूना।

चल मे, अग्नेरी गुफा मे, किले मे, भूमि के गर्म मे कही चला जाय या निदा जाय, कोई मदीन्यमत्त हागियो छुट मे ही कयो न छिया जाय, यह कूरकर्म अगिमत काल देहधारियो के जीवन को ना जाता है, किमी को छोडता नहीं ।”

किन्तु मृत्यु का आगमन जितना निश्चित है, उतना ही मृत्यु का समय अनिश्चित है, अनियत है । मृत्यु कब आ धमकेगी, उसका पता सर्व-साधारण मनुष्यों के नहीं होता, उमीलिन बिचारक एव आराधक साधक अप्रमत्त एव मत्त होकर पदों में ही जगीर एव शरीर सम्बन्धित जड-चेतन पदार्थों के प्रति मोह-ममता में स्थित होकर मृत्यु का समय प्राप्त करते हैं । वे पदार्थों में ही ज्ञान, ज्ञान, समानि और समानि का विना साधन हो जाते ।

हम लोग क्या करते, कि वृत्तवशात् तब तो मृत्यु का कोई लक्षण नहीं पड़ता, वह कोरी भान्ति है । अगर बुढ़ापा आने तक मृत्यु का आगमन नहीं होता तो जानी या विचारवाला साधक पदार्थ में मृत्यु में मार्ग न रखे । किन्तु सर्वत्र विचारक रूप में न करते—

पडा-गडा वर्षा तब मड़ता रहे, पीड़ित होता रहे, तो ऐसी दशा में दुःख या पीड़ा का अनुभव अव्यक्त होता है, जबकि अकस्मान् मृत्यु आ जाने पर दुःख या पीड़ा का अनुभव नहीं होता, या अत्यन्त कम हो जाता है।

परन्तु अज्ञानी जीव मृत्यु के कल्पित भय में कांपता है, वह मृत्यु के समय उत्पन्न जमीर और जरीर में सम्बद्ध परिवार, धन, जमीन-जायदाद, मकान, दूतान, व्यापार आदि के प्रति मोह-ममता के कारण अत्यन्त दुःखी होता है, विनाश करण है, मोह है, मीनू बढ़ता है। नाथ ही उसकी उस मोहदशाजनित वेदना को दूर करने के लिए उपाय सम्बन्धित बार-बार मोह में पेरित करने वाली जाने याद दिलाते हैं।

अज्ञानिन् जानी सम्प्रतिष्ठि सा तत् मृत्यु को भयानक या दुःखदायक मानता है, परन्तु मृत्यु, जन्म एवं उत्पत्ति मानती है। और मृत्यु के कल्पित भय में अपनी मूर्खता को जानने वाली जमीर एवं जरीर सम्बद्ध पदार्थों के प्रति मोहजनित दशा में पड़ने के कारण विचित्र या भयानक नहीं होती। मृत्यु किसी तरह नहीं होता। मृत्यु के विनाश के सम्बन्धित न करने के अर्थ में जानने सावधान एवं मार्ग रहते हैं। पीड़ा

पारणे के दिन श्रावक मन्त्रिताहारवर्जित आहार करे, मातु उद्गमनि रोगनि
 आहार करे । दूसरे चार वर्ष भी इसी प्रकार विभिन्न तपस्या करे, तिस्रु पारणे में
 विगर्ह (विहति) रहित आहार करे । उसके बाद दूसरे दो वर्ष तक एतान्तर उपवास
 करने पारणे में आयम्बित करे । ग्यारहवें वर्ष के पहले के ६ महीने में उपवास में
 में आगे तपस्वरग न रहे, पारणे में ऊनीदगी सहित आयम्बित करे । उसके बाद उत्तर
 के ६ महीने में उत्कृष्ट तप गती में तेवर अठाई तप करे, पारणे में शरीर
 तपस्वित करे । निजीतृप्ति में ग्यारहवें वर्ष की मतेमता में उपवास करे अपरि
 में पारणे करे । कुछ आचार्यों का मत है कि ग्यारहवें वर्ष की मोक्षम में पारणे
 मोक्ष करने हए फल तो तमस एक-एक तीर कम करता जाय, जब एत पर
 का पारणे करे उसमें एक एक निरा (मोटा कण) अब कुछ-कुछ दिनों के बाद
 गन्तव्य चले, अन्तिम दिन सिर्फ एक निरा अब का भोजन करे । कुछ आचार्यों का मत
 है — १०वें वर्ष के पारणे मय होत रहे, तब चार मास तप एक दिन के पारणे में
 का पारणे में पारणे । उसे शीघ्र तपस्व के साथ निकले, पाप में क्षमा है
 का पारणे में पारणे । उस पारणे तमस १२ वर्ष की पारणे में पारणे
 का पारणे में पारणे । उस पारणे में पारणे । पारणे में पारणे में पारणे
 का पारणे में पारणे । पारणे में पारणे में पारणे । पारणे में पारणे में पारणे

और चेष्टा रहती है, जबकि मल्लेयना तभी की जाती है, जब जीवन की न तो कोई आशा रहती है और न चेष्टा की जाती है। अकस्मान् कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाए कि उपवास वगैरह नपश्यचरण में निराशा में आशा उदय हो जाए तो तबसे प्राणत्याग करने (जल्दी मरने) की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मल्लेयना सामान्य नहीं है, अगितु आई हुई मौत के सामने वीरतापूर्वक आत्मसमर्पण करना है। इस साधक शान्ति और आनन्द में समाधिपूर्वक प्राणत्याग करता है। मृत्यु में पतने से उस व्रतादि आराधन करना चाहिए, कर जाता है। मरण निश्चित है, किन्तु मरण काल अनिश्चित है, इसलिए दीर्घकाल या अल्पकाल की पूर्ववैयागी ने पिता मरने पर मरण का अपूर्वनाम प्राप्त होना असम्भव है। अनादिकाल में देहात्मबुद्धि और तमस, परपदार्थों तथा उनके भावों में गाढ आसक्ति, मोह या द्वेषपूर्वक विषमता, पूर्ण रूप से मिट जाए, ऐसा होना सुख नहीं है। इसलिए उस प्रकार के संसार में श्रीगुरु या निवृत्ति ने किए पूर्ववैयागी के रूप में अश्याम अत्यन्त साक्षात् है। ११ अन्ततः धर्मयज्ञ और धर्मकर्म पूर्ण स्वरूप जागृत होने में, उपसमर्पण जाति पदों में उपसमर्पण के अर्थ या वाक्य के उपकारी निमित्त में, या ज्ञानी पुरुषों के संपादन के नाम में या समाज के दुःख में उपसमर्पण होती है।

उत्पन्न होता है और उस भावना की मिद्धि के कारण ही यह पूर्ण बनता है। इसलिए यह स्व-हिंसा नहीं है।

आत्महत्या तो किसी कपायावेश का परिणाम होता है, जबकि मनेगना त्याग और दया का परिणाम है। जहाँ अपने जीवन की कोई उपयोगिता न रह गई हो, दूसरे को व्यर्थ तप्ट उठाना पड़ता हो, दूसरे से सेवा लेनी पड़ती हो, उस समय उपवास आदि द्वारा शरीर छोड़ना दूसरे पर दया है।

अतः मनेगना-मंशारा करने में आत्मघात का दोष सम्भव नहीं है। यदि मांषान्न अन्नजन (मंशारा) की किसी गैहिक-पारम्वीर्य सम्पत्ति या पदार्थ की इच्छा में कामिनी की कामना में या अन्य लौकिक अभ्युदय की उच्छ्रा में आत्महत्यापूर्वक निराग्राह्य या भय अवस्था लोग में किया जाए तो वह भी हिंसा हो सकता है। परन्तु भौतिक-धर्म राग-द्वेष मोहादि में युक्त होकर मरने की आज्ञा नहीं देना। अतः जो पुरुष विष, शस्त्र, क्लृप्ताश, अग्निप्रवेश, कूपपतन आदि प्रयोगों द्वारा प्राणनाश करता है, वह आत्महत्या करता है। ईशोपनिषद् में स्पष्ट कहा है—

कगई जाती । अतः श्रावक मरण के अन्त समय में होने वाली मलेराना को प्रीति पूर्वक सेवन करने वाला होता है ।

गृहस्थ श्रावक या गृहत्यागी माधु जो प्रीतिपूर्वक संलेराना को स्वीकार करता है, वह अपने को कृतकृत्य समझता है, अपने जन्म को सफल मानता है, उन पुं (समानि) मरण ने अपने को धन्य मानता है ।

मलेरानामरण (सयारा) के प्रकार

मलेराना द्वारा समानिपूर्वक मरण के तीन प्रकार हैं—भातप्रत्यागमन, इगिनीमरण एवं प्रायोपगमन (पादपोषगमन) ।

उन तीनों में साम अन्तर समझ लेना चाहिए । भोजन का क्रम तब तक जारी रखा जायेगा जब तक कि अपेक्षा तीनों समान न हों । अन्तर है—शरीर में यदि उच्छ्वास मात्र है । जिस समानिमरण में अपने और दूसरे दोनों के द्वारा किए गए उपकार की अपेक्षा रहती है, उसे भक्तप्रत्यागमन (मन्याम) समानिमरण कहते हैं । जिसमें अपने द्वारा किये गए उपकार की अपेक्षा रहती है, किन्तु दूसरे के द्वारा किए गए उपकार की अपेक्षा नहीं रहती, वह इगिनी समानिमरण है तथा जिसमें अपने द्वारा किये गए उपकार की अपेक्षा से रहित समानिमरण है, उसे प्रायोपगमन कहते हैं ।

शरीर धर्मपालन करने में समर्थ न रहा, बीजरूप हो गया, आतकिन या अन्तर्गतीर्ण, अज्ञान हो गया ।"

उन प्रकार शरीर (समस्त) का व्युत्सर्ग करके दो बार नमोऽर्घ्य के पाठ में विविध नैवेद्यों और मित्रों की स्तुति एवं प्रणिपात करे ।

उसके बाद मदा मर्तक एवं मावधान रहे । यदि श्रावक सत्संगता कर रहा हो तो वह व्यक्ति तब कि परिणामों की विजृम्भ के बिना उत्कट तप करने से काय मोक्षना या हा जलपानी, कषाय मलेगना नहीं । शरीर की मलेगना निरतिनाग करनी ही तब माता त अन्तरंग में रागद्वेषादि रूप भाव परिग्रह का निनाम हो जायगा । तब तब नहीं करता, वह व्यर्थ ही अपने शरीर को कुश करके दण्ड देता है । शरीर तब तब हो तब करने के लिए ही शरीर का कुश करना है ।

मनेगना-मयारा में कुछ विशिष्ट भावनाएँ

समाधिभरण की मूल नींव है—सम्यक् आत्मश्रद्धा—देह और आत्मा
विभक्ता रूप श्रद्धा, अथवा सम्यक् धर्मश्रद्धा ।

चित्तना भी वाच्य-आभ्यन्तर परिग्रह है, वह सब राग-द्वेष को पैदा करने :
३ । तन्मयी, कैवल्यगती, आभिरोगिकी, आमुगी और मम्मोहनी इन सविशेष कुं
भाव भावनाओं का त्याग करने, तप, श्रुताभ्यास, निर्मयता, एकत्व, धृतिमय
तान प्रसार की असंविष्ट भावनाओं का निष्कर्ष प्राप्त — सिद्धि ।

